શ્રી યશોવિજયજી
જૈન ગ્રંથમાળા
દાદાસાહેબ, ભાવનગર.
ફોન : ૦૨૭૮-૨૪૨૫૩૨૨
૩૦૦૪૮૪૬

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat
www.umaragyanbhandar.com

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

१४—द्विगर्त (डुगर) देश के कवि [लेखक—ठाकुर कांतसिंह बिलौरिया, जम्मू] शेष अंश— ३८५

१५—शब्द-शक्ति का एक परिचय [लेखक—श्री पद्मनारायण आचार्य, एम० ए०, काशी] ३९७

१६—तसव्वुफ अथवा सूफीमत का क्रमिक विकास [लेखक—श्री चंद्रबली पांडेय, एम० ए०, काशी] ४४३

सूचना

प्रचार की दृष्टि से सभा ने निम्नलिखित पुस्तकों का मूल्य घटाकर इस समय नीचे लिखे अनुसार कर दिया है।

तुलसी ग्रंथावली प्रथम खंड	...	...	१)
तुलसी ग्रंथावली दूसरा खंड	...	...	२)
पाश्चात्य दर्शन ...	...	...	२)
कोशोत्सव स्मारक-संग्रह	...	...	३)
करुणा ...	...	...	३)
फाहियान (सजिल्द) ...	...	...	१)
वीसलदेव रासो ...	...	...	॥)
अशोक की धर्मलिपियाँ ...	...	...	२)
भूषण ग्रंथावली ...	...	...	१)
शशांक ...	...	...	२)
प्राचीन मुद्रा ...	...	...	२)
मुद्राशास्त्र ...	...	...	२)
चित्रावली ...	...	...	१॥)
गो० तुलसीदासजी का चित्र—बढ़िया कागज		...	॥)
,, ,, ,,—साधारण कागज		...	।)

मंत्री नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दोहा—किए जाइ ज्वालामुखी डेरे जुरि सभ भूप।
आइ मिल्यो उदुआल तहाँ गोपीचंद अनूप ॥ २० ॥

भावार्थ—फिर सब राजाओं ने मिलकर ज्वालामुखी में डेरा किया। वहाँ डडहाल (डाडापति) राजा गोपीचंद आ मिला।

सवैया

छोरी नदौन कटोच तबै जसुआल समेत कलेशर आए।
क्यौंहु न लंघि सके जमुआलय दीजिय जानि घनो हुलसाए ॥
फौज कछूक पठाइ गुहासन रात में आप तहाँ पुनि आए।
सूरन को समुझाय भले तत्काल कलेशरहुँ को सिधाए ॥२१॥

भावार्थ—फिर कटोच नादोन को छोड़कर जसुआलों के समेत कलेशर में आ गए। जमुआल वहाँ लाँघकर गए और खुशी से कुछ फौज गुहासन को भेज फिर वहीं आ गए। सब शूर-वीरों को समझाकर कलेशर को सिधारे।

दोहा—देखि जरत निज देश को लोक बड़ो डरपाइ।
घर घर ऐसे कहत हैं आपस में अकुलाइ ॥ २२ ॥

भावार्थ—अपने देश को जलता हुआ देखकर उस देश के लोग भयभीत हुए। आपस में व्याकुलता से घर घर में ऐसा कहने लगे।

कवित्त

मए हो न मीत रणजीतदेव भूपती कों,
बाँध्यो तुम्हे वैर जो मुरेफा सरदार सों।
छोरयो हैं पठानिए गुलेर डडुहाल तुम्हें,
कौन काज मेल कीनो जाइ जसुआल सों ॥
देश को जरायो औ लुटाय के खराब करयो,
दत्त भने कौन फल पायो पठियार सों।
कौन समुझावे इस मूरख घमंडाजू को,
कोष कर खंडा मिल भूपति कुमार सों ॥ २३ ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भावार्थ—लोग कहने लगे कि महाराजा रणजीतदेव से न डरकर एक बड़े सरदार से वैर किया। तुमने (घमंडचंद कटोच राजा ने) पठानिए (पठान के राजा), गुलेरिए (गुलेर के राजा), डडुहाल (डाडा के राजा) को छोड़कर जसुआल (जसुआँ के राजा) से जाकर मित्रता की; देश को जलाकर और लूटकर खराब किया। पठियार (किला) लेकर क्या फल पाया ? इस राजा घमंडचंद को कौन समझावे कि वह गले में तलवार रख राजा के पुत्र (वृजराजदेव) की शरण में जाए।

कवित्त

कियो ना विचार पठियार जो छिनाइ लीन्हो,
वैर एहि काल चंब्याल सों जगायो है।
वैरी है गुलेर तेरो मेल ना पठाणियाँ सों,
एक अभिरायसिंह तेरे साथ आयो है॥
कहा अब कीजे तन छीजे धूम देखत हीं,
बैठ के नादौन सारे देश को जरायो है।
कहे एक राणी यों घुमंडाजू को, वाणी
कौन के भरोसे रणजीतदे रुसायो है॥ २४॥

भावार्थ—राजा घुमंडचंद कटोच की एक रानी राजा से पूछती है कि आपने बिना विचार किए पठियार का दुर्ग छीनकर चंब्याल राजा से वैर कर लिया है। गुलेर तुम्हारा पहले से ही वैरी है, पठानिए (पठानकोट के राजा) से भी तुम्हारी कोई मित्रता नहीं; एक अभिरायसिंह (जसुआँपति) तुम्हारे साथ आया है। अब क्या करें? धुआँ देखकर दिल दुखी है। आपने नादौन बैठकर सारे देश को जला दिया है। आपने किसके भरोसे रणजीतदेव को क्रोधित किया है ?

दोहा—उत पुनि होत प्रभात ही श्री वृजराज कुमार।
साथ सकल असुआर ले गयो बयासा पार॥२५॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भावार्थ—उधर प्रातःकाल होते ही कुँवर वृजराजदेव सारे अश्वारोहियों को साथ ले व्यास नदी के पार चले गए।

सवैया

दूर तें धूम निहार कोऊ जन चार कलेशर जाइ पुकारयो।
सोए कहा उठि भागो सभो जमुआलन को दल लंघि सिधारयो।
यों सुनि कोऊ न काहू को पूछत भागत नाम जगात्त सुहारयो।
भागि गए जसुआल कटोच तबै कछु और ना मंत्र विचारयो ॥२६॥

भावार्थ—किसी पुरुष ने दूर से धूल देखकर कलेशर में आकर पुकारा कि क्यों सोए हो, सब भाग चलो। जमुआलों (जम्मू) की फौज नदी लाँघ आई है। यह बात सुनकर किसी ने किसी से नहीं पूछा और भागने लगे। इस तरह जसुआल और कटोच ने भागने के बिना कोई मंत्र न विचारा।

आगे चलकर कवि ने कटोच और जसुवालों के भागने का एक कटाक्ष दिखलाया है। यथा—

सवैया

राखी रही कर बाण कुमाण तुणीरहु ते कटि तीर न साँधे।
पाइ बनाइ बनात के कोष बँदूकें भरी ते धरी रहिं काँधे॥
कोष रहीं तरवारें सभो कुलतार पई जनु लाज के फाँधे।
दत्त कटोचहु ते हथियार बनाइ के भूषण हैं तेहि बाँधे ॥२७॥

भावार्थ—बाण-कमान और तीर पीठों पर ही बँधे रहे। बानात के परदों में भरी बंदूकें कंधे पर ही धरी रहीं और तलवारें भी कोष के अंदर ही मानो तारों के लाज की मारे बंद रहीं। इस तरह कटोचों ने मानो सब हथियार भूषण जानकर पहने थे।

सवैया

डारि के सज्ज सभे धरणी तत्काल तुरंग पै दीनी फिराकी।
पाइ कपाइ बड़ो दुख दौरत दौरि थकाए सुरंग मरा की॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

छोरि के लाज भगे दोऊ भूपति आस तजी धन प्राण धरा की।
भागत जोर जगी गरमी तब बाय तकी ठंडी राजपुरा की ॥२८॥

भावार्थ—सभों ने पृथ्वी पर सब हथियार फेंककर घोड़ों पर फराकी मारी और पैदल सेना अत्यन्त परिश्रम से भागी। घोड़े भी थक गए। दोनों राजा (कटोच और जसुआल) लज्जा परित्याग कर भाग निकले मानो धन, प्राण, राज्य की आशा छोड़ दी। भागनेवालों को गर्मी आ गई जिन्हें राजपुर की ठंडी वायु ने विश्राम दिया।

सवैया

जारि चनौर गुहासन को तब श्री वृजराज कलेशर आयो।
लूटत जारत देशहिं ता छिन छूट पठाइ नदौन जरायो॥
जानि के मीत खरो अपनो तत्काल कल्हर को भूप बुलायो।
काँपि उठे मँडियाल जबै वृजराज निवेश नदौन में आयो॥ २९॥

भावार्थ—वृजराजदेव चनौर और गुहासन नगरों को जलाकर कलेशर में आए और राजा कहलर (विलासपुर) को अपना परम मित्र जानकर बुलाया। वृजराजदेव को नादौन में आया हुआ सुनकर मंडी का राजा भयभीत हो गया।

आगे चलकर कवि ने महाराजा रणजीतदेव की स्तुति में एक कवित्त कहा है। वह इस प्रकार है—

कवित्त

थोरि आन मान रहे शाह पातशाहन की,
पीठ जिन देखी है दीना बेगषान की।
मंढो औ घलूर आइ दाखिल हजूर भए,
छोरि के गरूर शूरवीर के गुमान की॥
प्रसरयो प्रताप जो युआध महाराजहुँ को,
कौनहू न ठानी मत मीयाँ सों मिलान की।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

देवदत्त भूप रणजीतदेव ऊपर ही,
ह्वै तो सब देख हेतु ठाई भगवान की ॥ ३० ॥

भावार्थ—बादशाहों की किंचित् आज्ञा माननेवाले जिसने दीना बेगषान को हराया; मंडी और कहलूर (बिलासपुर) पर्यंत के राजे उसके पास हाजिर होते रहे; जिन्होंने मद, शूर-वीरता को त्यागा; उसके प्रताप से युग्राध (काँगड़ा) देश अधीन हुआ। ऐसे महाराजा रणजीतदेव पर भगवान् की अति कृपा थी।

सवैया

बाँटि दियो सब देश कटोच को भूपन को वृजराज कुमारहीं।
लायो चनौर गुहासन साथ गुलेर सों बागर द्वे बल हारहीं॥
पालम देश दियो चंब्याल को आगे हुतो उनको पठियारहीं।
और दियो किलेदार को देश नदौन धरे अपने सरदारहीं ॥३१॥

भावार्थ—वृजराज कुमार ने कटोचों (काँगड़ा) का देश समीपस्थ राजों को बाँट दिया। चनौर को गुहासन से मिलाया, कुछ गुलेरों को दे दिया, पालम का देश चंब्याल (चंबा राज्य) को दिया। पहले केवल पठियार उनके अधीन था। कुछ भाग किलेदारों को देकर नादौन में अपने सरदार छोड़े।

दोहा—दीनों देवीचंद को महल मोरिया देश।
ले धन कियो किसान ज्यों सकल युग्राध नरेश ॥३२॥

भावार्थ—देवीचंद (डाडा के राजा) को महलमोरी का इलाका दिया। इस तरह धन लेकर युग्राध देश के राजों को किसानों की भाँति कर दिया।

सोरठा—बड़भागी वृजराई बाँटि काँगड़ा देश को।
करी कलेशर आइ कुटलेहड पर छूट पुनि ॥३३ ॥

भावार्थ—बड़े भाग्यवाले वृजराजदेव ने काँगड़ा देश को बाँटकर, कलेश्वर के मुकाम पर आकर, कुटलेहड राज्य पर चढ़ाई की।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सवैया

हार रहे सब भूप घलूर के जाके लिये बहुतो धन लायो।
हारे पठान उठान सभी पुनि जो गढ़ काहु के हाथ ना आयो॥
जाँ लगी कैद भयो देवीचंद जो दे धन श्री रणजीत छुड़ायो।
सो कुटलेहड श्री वृजराज प्रसादहुँ तें बिन खेद ही पायो॥३४॥

भावार्थ—जिस (कुटलेहड देश) के कारण कहलूर के राजे बहुत धन व्यय करने पर भी हारे रहे, जिस देश के पीछे पठान इत्यादि हारे रहे पर वह दुर्ग किसी के हाथ न आया; जिसके पीछे राजा देवीचंद (डाडापति) कैद रहा; जिसे धन देकर महाराजा रणजीतदेव ने छुड़ाया था वह कुटलेहड का देश वृजराजदेव ने बिना परिश्रम के ही ले लिया।

दोहा—कूच कलेश्वर तें कियो सेना चली अपार।
लूट जारि छिनमाँ कियो सीवा मुलक उजार॥३५॥

भावार्थ—कलेश्वर से कूचकर सेना लिये एक क्षण में सीवा देश को लूटकर और आग से जलाकर विध्वंस कर दिया।

सोरठा—सीवापुर को राइ नाम नरायणचंद पुनि।
आइ मिल्यो अकुलाइ भूपति भूपकुमार सों॥३६॥

भावार्थ—सीवा देश का राजा नारायणचंद व्याकुल हुआ और वृजराजदेव की शरण में आकर मिला।

सोरठा—श्री वृजराजकुमार जीति सबै या भूप कों।
ग्राम पृथीपुर सार दीनो गोविंदचंद कों॥३७॥

भावार्थ—कुमार वृजराजदेव ने राजा सीवा को जीतकर उसका ग्राम पृथ्वीपुर राजा गोविंदचंद (डाडापति) को दे दिया।

दोहा—जीति सबै या भूप को गए गुहासन फेर।
गोपीपुर डेरे किए राजपुरा महगेर॥ ३८॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भावार्थ—सीवा को जीतकर फिर गुहासन से होकर गोपीपुर में डेरे किए।

कवित्त

कागद पठायो अभिरायहुँ को वृजराज,
ऐसें लिखी देवदत्त दूत समुझाइ के।
होते आदमी त जमुआल जसवाल जातें,
कहों एक शिष्य जाको जानों चित लाइ के॥
पापिन को भूपती घुमंडा यों निकार दीजै,
लीजै सब वाको देश गोपीपुर आइ के।
नाहीं तो तियार हूजे भूपत सों लरबे कों,
आवत हैं शूरवीर अति ही रिसाइ के॥ ३९॥

भावार्थ—वृजराजदेव ने एक दूत को पत्र देकर और समझाकर अभिरायसिंह (जसवांपति) को लिख भेजा कि जमुआलों (जम्मूपति), जसवालों (जसुआँपति) की आदि से मित्रता चली आती है इस कारण हम आपको एक शिक्षा देते हैं, चित्त लगाकर श्रवण करें। पापी राजा घुमंडचंद (काँगड़ापति) जो आपके पास है उसे अपने देश से निकाल दीजिए और उसका देश गोपीपुर आकर हमसे लीजिए। अस्वीकार हो तो युद्ध के लिये तैयार हो जाइए। हमारे शूर-वीर क्रुद्ध हुए आ रहे हैं।

सोरठा—पढ़ि कागद अभिराय हितकर मानी शीष वह।
जानि मीत वृजराय आइ मिल्यो वृजराज सों॥४०॥

भावार्थ—राजा अभिरायसिंह ने पत्र पढ़कर राजकुमार (वृजराजदेव) की हितकर शिक्षा मान ली और तुरंत वृजराजदेव से आ मिला।

कवित्त

पंचन में मानि के बुलायो अति आदर सों,
दीनो वह देश चित आनंद बढ़ाइ के।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जाके हेत कीनो है अकाज वृजराजदेव,
लीनो कुटलेहड जो रानी से छिराय के ॥
हरष्यो जब पाछे नृप आयो निज समर माही,
करष्यो है विचार जबै वकत को गुआइ के।
नेकहुँ न मान्यो उपकार दत्त मीतन को,
आपनी भलाई सब दीनी है बहाइ के ॥४१॥

भावार्थ—वृजराजदेव ने आदरपूर्वक राजा के साथ भेट की और बहुत देश देकर सम्मान किया। इस पर राजा घुमंडचंद को भी सुध आई परंतु बेला गुजारकर। इसके आगे कवि ने अपनी कविता में ऐतिहासिक घटना के साथ साथ कुछ कुछ हास्यरस का वर्णन किया है। कारण यह कि ये वंश के नाते रिश्तेदार हैं।

सोरठा—आइ मिल्यो जसुआल देवीचंद बिदा भयो।
लागी करन शृंगार यों सुनि नार गुलेर की ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जसुआँपति (राजा अभयरायसिंह) आ मिला और राजा देवीचंद (घलूर विलासपुर का राजा) बिदा हुआ। इसके पीछे यह समाचार पाकर गुलेर की युवतियाँ शृंगार करने लगीं।

कुंडलिया

देवीचंद बिदा भयो आइ मिल्यो जसुआल।
यों सुनि नार गुलेर की लागीं करन शृंगार ॥
लागीं करन शृंगार कंत आवत घर जानें।
सरें सकल अभिलाख रैन दिन यों मत ठानें ॥
देवदत्त चित लाइ जान वरदायक सेवी।
सेा तूठी जगमाइ संत सुखदायक देवी ॥४३॥
हरिपुर की तिरियान को बाढ्यो अमित अनंद।
आवत हैं घर को सुन्यो भूप गुबर्धनचंद ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भूप गुवर्धनचंद शकुन सब होवन लागे।
लषि आवत घर कंत विरह दूखन सब भागे॥
दत्त फुरी दृग वाम उरुज बाईं भुज फरकी।
घर घर करत सिँगार चार नारी हरिपुर की॥४४॥

भावार्थ—देवीचंद (राजा विलासपुर) के बिदा होने और जसु-आल (जसुआँपति अभिरायसिंह) के मिलने पर गुलेर की युवतियाँ शृंगार करने लगीं कि उनके पति अब आएँगे; उनकी सारी कामनाएँ पूरी होंगी। वे दिन-रात यही विचारकर चित्त लगाकर वरदायिनी भगवती की आराधना करती थीं। भगवती ने वरदान दिया, जिसको सुनकर हरिपुर (गुलेर) की युवतियों को आनंद हुआ। जब राजा गुवर्धनचंद (गुलेरपति) का आगमन सुना तब अच्छे अच्छे शकुन होने लगे। कंत के घर आने से सारे दुःख मिट गए; बाईं आँख और भुजा फरकने लगी। इस कारण घर घर हरिपुर में शृंगार होने लगा।

आगे चलकर कवि ने जम्मू की डोगरी भाषा में एक कवित्त वृजराजदेव की रानियों की तरफ से लिखा है। यथा—

कवित्त

ठंडे ठंडे पाणी जिन्हें पीते बर्फाणी, कहूँ
तो हियादा पाणी हुन चेते कुस आउँदा।
मीठे मीठे ताली जिन्हें चूपे अंब पंजले दे,
कुथे खरबूजा हुण उंदे मन भाउँदा॥
लिखी लिखी थके नैन पक्वे राह दिखी दिखी,
दत्त भने नेाऐं छेल छोडी कुण आउँदा।
पई बरसांतहु न उन्हा मनसांत,
तदउंदे बख केसकी आसाडा मन आऊँदा॥४५॥

भावार्थ—वृजराजदेव की रानी अपनी डोगरी भाषा में लिखती है कि जिन्होंने बर्फ के सर्द पानी पिए उनको तवी नदी (जम्मू

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के नीचे बहनेवाली) का गरम जल कब भाता है (उनको कब याद आता है) ? जिन्होंने पंजल के मीठे मीठे आम चुन-चुन खाए हैं अब उन्हें यहाँ का खरबूजा कब भाता है ? हम लिख लिखकर थक गईं और आँखें देख-देखकर पक गईं परंतु नए स्वरूप को छोड़कर कौन आता है। यहाँ अब बरसात आ गई, उनका मन शांत है, उनका ध्यान इधर कब आता है !

यह कवि का कटाक्ष राजकुमार के प्रति हँसी का सूचक है।

दोहा—काहू मीत कटोच के लिखि पतियाँ यह बात।
दत्त न और विचार कछु यही मिलन की बात ॥४६॥

भावार्थ—कटोच राज्य के किसी मित्र ने राजा घुमंडचंद (काँगड़ापति) को पत्र लिखा कि और कोई विचार मत करो, यह मिलने का समय है।

सवैया

देश विदेश नरेशन देशहिं मानत हैं इनको शिर नाइ के।
जो करि प्रीति मिल्यो इनसों सो रह्यो निरभीत सिरी थिर पाइ के॥
श्री यदुराय कृपा करि दत्त रह्यो इनको यश भूतल छाइ के।
तातें कटोच संकोच करो मत बेग मिलो वृजराज सों आइ के॥४७॥

भावार्थ—प्रत्येक देश के राजा नित्य इनको (जम्मूपति) शिर नवाते हैं। जो कोई इनसे प्रीति कर मिलता है वह सदा निर्भीक रहता है। श्रीकृष्ण महाराज की कृपा से इनका यश पृथ्वी पर छाया हुआ है इसलिये आप (राजा काँगड़ा) कोई विचार न करके तुरंत वृजराजदेव से आकर मिलें।

दोहा—पढ़ि कागद वह मीत को मिल्यो घुमंडा आइ।
मीयाँ[1] को जयदेव करि बैठ्यो शीश निवाइ॥४८॥

---

(१) यहाँ राजपुत्रों की पदवी मीयाँ थी।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भावार्थ—राजा घुमंडचंद (कटोच), मित्र के पत्र को पढ़कर, वृजराजदेव से आ मिले और जयदेव को माथा नवाकर बैठ गए।

सवैया

दे पुनि राज घुमंड को तूठी किसान ज्यों धान उषारि लगाइ के।
जीति जलंधर को वृजराज चल्यौ घर को यशखंभ गड़ाइ के॥
सोहत शान समेत निशान जो फेर धरे हैं नदौन झुलाइ के।
भूपत वे अपने घरहूँन को कीने बिदा सब देहरे आइ के॥ ४९॥

भावार्थ—फिर घुमंडचंद को राज्य दे दिया, मानो किसान ने उखाड़े हुए धान फिर से लगाए हैं। इस तरह जा घर का देश जीतकर और यश के खंभ गाड़कर वृजराजदेव घर को चले। वह निशान फिर नादौन में झूलने लगे और सब (काँगड़ा देश व जालंधर प्रांत के) राजे मुकाम देहरा से बिदा कर दिए गए।

———

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(१५) शब्द-शक्ति का एक परिचय

[लेखक—श्री पद्मनारायण आचार्य, एम० ए० काशी]

भाषा सबकी साधारण संपत्ति है। एक अज्ञ भी उससे काम लेता है। विज्ञ केवल उसकी विशेष जानकारी रखता है। पर कभी कोई विशेषज्ञ उसके इतने निकट पहुँच जाता है कि वाणी उसे आत्म-समर्पण कर देती है, उस विपश्चित्—वाग्योगविद्—तपस्वी से तनिक भी दुराव नहीं करती, सब रहस्य खोलकर कह देती है। सुदूर वैदिक काल में ऐसे ही एक ऋषि थे। उनसे एक दिन घुल घुलकर बातें करते हुए वाग्देवी ने अपने बारे में कहा था—

मैं रुद्रों के साथ विचरती हूँ, वसुओं के साथ साथ घूमती हूँ, आदित्यों और विश्व-देवों के साथ विहार करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनों का भरण-पोषण करती हूँ। मैं ही इंद्र, अग्नि और दोनों अश्विनीकुमारों को पालती हूँ।

× × × × ×

मैं (जगत् की) रानी हूँ; धन की संग्राहिका देने-दिलानेवाली हूँ। मैंने सबसे पहले पूज्य प्रजापतियों को पहचाना था। मैं बहुतेरे स्थानों में स्थिर होकर अपना आसन जमा ही रही थी कि उन्होंने मुझे पहचानकर अन्य सुदूर देशों में भेज दिया।

देखने-सुननेवाले सभी प्राणी मुझसे आहार पाते हैं। (आश्चर्य तो यह है कि) वे मुझे जानते नहीं पर रहते हैं मेरे ही सहारे। तुमने तो बहुत कुछ सुना है। तुमसे ही मैं कहती हूँ। सुनो और इस पर विश्वास (श्रद्धिवं) करो।

मैं स्वयं यह कहती हूँ कि कोई ऐसा नहीं जो मेरी सेवा नहीं करता। मैं जिस जिसको चाहती हूँ, बड़ा बना देती हूँ—किसी को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ब्रह्मा (कर्त्ता और कवि), किसी को ऋषि (द्रष्टा) और किसी को मेधावान् (चतुर भावक)।

× × × × ×

मैं ही वायु के समान वेग से बहा करती हूँ; अखिल भुवनों को छूकर प्राणदान किया करती हूँ। आकाश के उस पार से लेकर पृथिवी के इस पार तक मैं रहती हूँ। अपनी महिमा से मैं इतनी बड़ी (अर्थात् विविधरूपा) हो गई हूँ। (ऋग्वेद १०।१६८)

वाणी के इस कल-कूजन में सच्चा आत्मपरिचय है। यह केवल काव्य-प्रलाप नहीं है। वास्तव में जगत् वाणी का लीला-स्थल है। शब्द ही इस अर्थमय जगत् का उत्पादक है। वही उसे अंधकार में से प्रकाश में लाता है। उसी के प्रकाश से विश्व में ज्ञान फैलता है। कोई भी विचारकर देख सकता है कि कोई भी सामान्य से सामान्य ज्ञान[1] बिना शब्द के नहीं हो सकता। तब बिना शब्द के लोक-निर्वाह कैसे हो सकता है? तभी तो वाणी ने कहा है कि 'जानें चाहे न जानें, पर रहते हैं सभी मेरे सहारे।' प्राचीन और नवीन[2] —दोनों ढंग के दार्शनिक विचारों ने सिद्ध करके दिखा दिया है कि बिना शब्द के ज्ञान नहीं हो सकता। बिना ज्ञान और विचार के लोक-यात्रा का निर्वाह भी नहीं हो सकता।

ग्रीक दार्शनिक वाणी की विभूतियों को जानकर, उसके 'विराट्' रूप का दर्शन करके इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने 'लोगस' (Logos)

---

(१) न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुस्यूतमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥
(भर्तृहरि-कृत वाक्यपदीय)

(२) आजकल के मनोवैज्ञानिक Stout और Ward ने भी यही लिखा है। (देखो—Analytic Psychology by Stout Vol. II)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के सिद्धांत की स्थापना कर डाली। भारत के दार्शनिकों ने तो शब्द[1] का एक दर्शन ही बनाकर छोड़ा। उपासकों ने उसकी श्री, शक्ति आदि के रूपों में विविध प्रकार से उपासना की। पर इस ढंग के विचारक और उपासक भाव के आवेश में व्यवहार से कुछ दूर जा पड़े। केवल वैयाकरणों और आलंकारिकों[2] ने व्यवहार की मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए भी शब्द की शक्ति का विचार किया है। अतः हम उन्हीं की सहायता से शब्द-शक्ति से परिचित होने का थोड़ा प्रयास करेंगे।

शब्द का व्यावहारिक अर्थ

साधारणतया लोग वाक्य के अल्पतम (छोटे से छोटे) सार्थक अवयव को **शब्द**[1] कहते हैं। शब्द का प्रसिद्ध अर्थ यही है। संस्कृत शब्दानुशासन[3] के कर्त्ता पतंजलि से लेकर आज तक के देश-भाषाओं के वैयाकरण शब्द का इसी अर्थ में व्यवहार करते हैं; पर 'शब्दार्थौ काव्यम्'[4] और 'रमणीयार्थ'[5]-प्रतिपादकशब्दः काव्यम्' कहनेवाले आचार्यों ने शब्द को वाणी, भाषा अथवा वाक्य सामान्य का उपलक्षण भी माना है अर्थात् वाक्य और शब्द—दोनों के अर्थ में 'शब्द' का

---

(१) देखो—पाणिनीय दर्शन (सर्वदर्शनसंग्रह) अथवा वाक्यपदीय। सामान्यतया तो न्याय-वैशेषिक, सांख्ययोग, मीमांसा, वेदांत, जैन, बौद्ध आदि सभी दर्शनों ने 'शब्द' का महत्त्वपूर्ण विवेचन किया। और तंत्र-ग्रंथों में शब्द-शक्ति का वर्णन और भी विशद रूप से हुआ है।

(२) देखो—Sweet's Grammar of English.

(३) देखो—महाभाष्य पृष्ठ १-२ (Keilhorn's edition. Vol. I)।

(४) देखो—भामह, रुद्रट, वामन, मम्मट आदि की काव्य की परिभाषाएँ (काव्यालंकार, काव्यप्रकाश आदि)।

(५) जगन्नाथ-कृत रसगंगाधर।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रयोग किया है। शब्द-शक्ति के प्रकरण में भी शब्द का वैसा ही व्यावहारिक तथा व्यापक अर्थ लिया जाता है। अन्यथा प्रत्यय से लेकर पद, वाक्य तथा महावाक्य तक की शक्तियों का अंतर्भाव शब्द-शक्ति में न हो पाता।

शब्द के तीन भेद

शब्द तीन प्रकार के होते हैं—वाचक, लक्षक तथा व्यंजक। मुख्य और प्रसिद्ध अर्थ को सीधे सीधे कहनेवाला शब्द वाचक कहलाता है। लक्षक अथवा लाक्षणिक शब्द बात को लखा भर देता है, अभिप्रेत अर्थ को लक्षित मात्र करता है; और व्यंजक शब्द (मुख्य अथवा लक्ष्य अर्थ के अतिरिक्त) एक तीसरी बात की व्यंजना करता है; उससे प्रकरण, देश, काल आदि के अनुसार एक अनोखी ध्वनि निकलती है। उदाहरणार्थ यह मेरा घर है—इस वाक्य में घर शब्द वाचक है, अपने प्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पर सारा घर खेल देखने गया है—इस वाक्य में 'घर' उसमें रहनेवालों का लक्षक है अर्थात् यहाँ घर शब्द लाक्षणिक है। और यदि कोई अपने ऑफिसर मित्र से बात करते करते कह उठता है, 'यह घर है, खुलकर बातें करो।' तब 'घर' कहने से यह ध्वनि निकलती है कि यह ऑफिस नहीं है। यहाँ घर शब्द व्यंजक है।

शक्ति का स्वरूप

इन सभी प्रकार के शब्दों का अपने अपने अर्थ से एक संबंध रहता है। उसी संबंध के बल से प्रत्येक शब्द अपने अपने अर्थ का बोध कराता है। बिना संबंध का शब्द अर्थहीन होता है—उसमें किसी भी अर्थ के बोध कराने की शक्ति नहीं रहती। संबंध उसे अर्थवान् बनाता है, उसमें शक्ति का संचार करता है। संबंध की शक्ति से ही शब्द इस अर्थमय जगत् का शासन करता है, लोकेच्छा का संकेत पाकर चाहे जिस अर्थ को अपना लेता है, चाहे जिस अर्थ को छोड़ देता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है। इसी संबंध-शक्ति के घटने-बढ़ने से उसके अर्थ की हास-वृद्धि होती है। इसी संबंध के भाव अथवा अभाव से उसका जन्म अथवा मरण होता है। अर्थात् **संबंध** ही शब्द की **शक्ति** है, संबंध ही शब्द का प्राण है। इसी से शब्दतत्त्व के जानकारों ने कहा है '**शब्दार्थसंबंधः शक्तिः**'। (शब्द और अर्थ के संबंध का नाम शक्ति है)।[1]

शब्द और अर्थ के इस संबंध को किसी किसी आचार्य ने '**वृत्ति**[2]' और किसी किसी ने '**व्यापार**[3]' नाम दिया है, इससे शब्दार्थ-स्वरूप के प्रकरण में सामान्यतया शब्दार्थ-संबंध, शब्द-शक्ति, शब्द-वृत्ति और शब्द-व्यापार का अभेद से व्यवहार किया जाता है पर प्रत्येक नाम में अपना निरालापन है। शक्ति में बल और ओज है, वृत्ति में आश्रित रहने का भाव है, व्यापार में क्रिया और उत्पादना की ओर झुकाव है। 'कारण' जिसके द्वारा कार्य करता है उसे 'व्यापार' कहते हैं। घड़े के बनाने में कुंभकार, मिट्टी, चाक आदि कारण हैं। चाक का घूमना, कुंभकार का उसे घुमाना आदि व्यापार हैं। घड़ा कार्य है। इसी प्रकार शब्द से अर्थ का बोध कराने में शब्द 'कारण' होता है, अर्थ-बोध कार्य और शब्द-शक्ति कारण का व्यापार है।

शक्ति के अन्य पर्यायवाची शब्द

---

(१) मीमांसकों, वैयाकरणों तथा आलंकारिकों का यही मत है पर नैयायिक 'ईश्वर-संकेत' को शक्ति मानते हैं। देखो—प० ल० मं० (४-१२)।

(२) देखो—अभिधावृत्तिमातृका और प० ल० मं० ('सा च वृत्तिरिष्या')।

(३) देखो—मम्मट का 'शब्द-व्यापार-विचार'—यह नाम ही 'अभिधावृत्तिमातृका' के समान व्यापक है। मम्मट ने प्रायः शक्ति के अर्थ में व्यापार का प्रयोग किया है। (देखो—काव्य-प्रकाश)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शब्द और अर्थ के इस संबंध की तात्त्विक समीक्षा करके शब्द-तत्त्वज्ञों ने उसे **तादात्म्य**[1]-**संबंध** माना है। नैयायिकों का ईश्वर-संकेत को शब्द और अर्थ के बीच का संबंध मानना यदि तर्क से सिद्ध भी हो जाय तो व्यवहार की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। शब्द और अर्थ का लोक में अभेद से व्यवहार होता है। 'अर्थ सुनना' और 'शब्द समझना' बहुत प्रसिद्ध प्रयोग हैं। इसी प्रकार नैयायिकों का यह साधारण तर्क कि शक्ति शक्तिमान् वस्तु से भिन्न कुछ नहीं है, शब्द-विद् वैयाकरणों को मान्य नहीं है। वे मीमांसकों की भाँति शक्ति को एक **स्वतंत्र**[2] पदार्थ मानते हैं। शक्ति द्रव्यपरतंत्र अवश्य रहती है पर उसका एक **सिद्ध स्वभाव**[2] भी है। आगे चलकर वैयाकरण शक्ति का स्वरूप भी निराले ढंग का मानते हैं। वे वास्तविक शक्ति तो **स्फोटनिष्ठ**[3] मानते ही हैं, उसके व्यावहारिक रूप की भी चार कलाएँ मानते हैं। **दिक्, काल, साधन** और **क्रिया**, उनके अनुसार, शब्द-शक्ति की चार **कला**[4] हैं जो वस्तु का अभिधान करती हैं। इन चारों रूपों में शक्ति प्रकट होती है और अपने असीम और अगम्य रूप को व्यवहार की सीमा में लाकर गम्य और ज्ञेय बना देती है। अतः शक्ति का देश-काल आदि से रँगा हुआ रूप ही देखने को मिल सकता है।

शक्ति का पारमार्थिक अर्थात् तात्त्विक स्वरूप

दिक् और काल को न्याय-वैशेषिकवालों ने द्रव्य माना है। उनको शक्ति का रूप मानना केवल शब्द-शास्त्रियों की सूझ है। साधन का अर्थ भी बड़ा व्यापक है। व्याकरण में वह कारक का

---

(१) शब्दार्थयोः संबंधश्च शक्तिरूपं तादात्म्यमेवेति। (प्रदीपोद्योत)

(२) भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इसका सविस्तर वर्णन किया है।

(३) वैयाकरण-भूषण में स्फोट का सुंदर वर्णन है।

(४) देखो वाक्यपदीय—···दिक् साधनं क्रिया काल इत्यादि ३।१,पृ०१५७

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पर्याय माना जाता है। अतः शब्दों का पारस्परिक संबंध शब्द की शक्ति का एक रूप मान लिया जाता है। पतंजलि मुनि के अनुसार साधन का अर्थ कुछ और विस्तृत हो जाता है। **गुणों के समूह** को ही महाभाष्य ने साधन माना है। गुण का आश्रय द्रव्य होता है। साधन-रूप शक्ति का आश्रय शब्द होता है। गुण भेदक और व्यावर्तक होता है। साधन भी अपने आश्रय को दूसरे से भिन्न बताने का काम करता है। इसी प्रकार क्रिया को पतंजलि ने '**धातु का**[1] **अर्थ**' माना है। नैरुक्तों और आधुनिक भाषा-शास्त्रियों के अनुसार धातु अर्थात् क्रिया से ही भाषा की सृष्टि हुई है। इतने से ही शक्ति के क्रियात्मक रूप का महत्त्व प्रकट हो जाता है।

यदि शास्त्रीय और रूढ़ अर्थों को छोड़कर शक्ति के इन चार रूपों पर विचार किया जाय तो एक बड़े रहस्य की बात मालूम हो जाती है। **दिक्** में भूगोलशास्त्रीय दृष्टि से शब्द-शक्ति का समावेश होता है। '**काल**' की लीला इतिहास में देखने को मिलती है। शब्द में कालवश शक्ति का ह्रास तथा उपचय हुआ करता है। भाषा-शास्त्रियों से शब्द-शक्ति पर भूगोल-इतिहास का प्रभाव छिपा नहीं है। इसी प्रकार **साधन**[2] का अर्थ वह शक्ति है जिसके द्वारा कोई भी वस्तु अपना व्यापार सिद्ध करती है। कारक इसी लिये साधन के अंतर्गत आ जाते हैं; क्योंकि शब्द की इसी शक्ति के द्वारा वाक्य की क्रिया निष्पन्न होती है। भर्तृहरि ने इस अर्थ को बिलकुल स्पष्ट कर दिया है और उन्होंने छः कारकों से मिलते-जुलते

---

(१) देखो—महाभाष्य—धात्वर्थः क्रिया।

(२) देखो—नाम च धातुजमाह निरुक्ते। व्याकरणे शकटस्य च तोकम्॥ आधुनिक Root-theory का विवेचन देखो—(1) Science of Language by Maxmuller and (2) Introduction to Nirukta by Dr. Laxman Sarupa. (Oxford)

(३) देखो—क्रियाख्यामभिधित्सौ साधर्म्ये साधनं विदुः। (वाक्यपदीय)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शक्ति के भी छः रूप माने हैं। अब साधन का इतना व्यापक अर्थ मानने पर प्रश्न उठता है कि क्रिया का क्या अर्थ है। **क्रिया** से यहाँ आलंकारिकों के **शब्द-व्यापार** का अभिप्राय है। लक्षणा-व्यापार को मम्मट ने '**आरोपिता क्रिया**'[1] कहा भी है। साधन और क्रिया (व्यापार) में अंतर स्पष्ट है। साधन के द्वारा वाक्य की क्रिया (अर्थात् धात्वर्थ) निष्पन्न होती है—वह वाक्य के प्रत्येक शब्द को आपस में संबद्ध कर देती है पर व्यापार-रूप क्रिया द्वारा शब्द अपने अर्थ से संबद्ध होता है। साधन एक शब्द को दूसरे शब्द से जोड़ता है, क्रिया (अथवा व्यापार) शब्द को उसके ही अर्थ से जोड़ती है। यद्यपि दोनों शब्द की ही शक्ति हैं पर एक बहिरंग है, दूसरी अंतरंग। इस प्रकार क्रिया का अर्थ एक शब्द-भेद नहीं रह जाता। **क्रिया** से यहाँ शब्द की **अर्थ-बोध कराने की क्रिया** का बोध होता है। शब्दार्थ-समीक्षा की दृष्टि से इसी शब्द-क्रिया अर्थात् शब्द-व्यापार का प्राधान्य रहता है। इसी से शब्दार्थ—स्वरूप के निर्णायक साहित्याचार्यों ने इस व्यापार-रूप शक्ति को ही शक्ति माना है। व्यावहारिक दृष्टि से भी शब्द के व्यापार में ही शब्द की शक्ति देखने को मिलती है। अतः आलंकारिकों ने इसी रूप की विवेचना की है।

शक्ति के इस व्यावहारिक स्वरूप की व्याख्या करने के लिये उससे संबद्ध शब्द और अर्थ—दोनों की ही आंशिक व्याख्या करनी पड़ती है। अतः शब्द-शक्ति का विद्यार्थी शब्द की तीन शक्तियों[2] को—

---

(१) देखो—...लक्षणाऽऽरोपिता क्रिया। (काव्य-प्रकाश २।६)

(२) मम्मट, विश्वनाथ आदि ने शब्द की तीन ही शक्तियाँ मानी हैं। उन लोगों ने चौथी शक्ति 'तात्पर्यार्थ वृत्ति' का उल्लेख मात्र करके छोड़ दिया है। देखो—(i) ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः। (सा० दर्पण २।३) और तात्पर्याख्यां वृत्तिमाहुः.....। (सा० दर्पण २।२०) (ii) तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्। (का० प्र०)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थात् अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना को—और उन शक्तियों के आश्रयभूत वाचक, लक्षक तथा व्यंजक तीनों प्रकार के शब्दों को अपना प्रधान विषय बनाता है। शब्द की व्याख्या में थोड़ी अर्थ की भी व्याख्या आ ही जाती है। अर्थ के लिये ही तो शब्द व्यापार करता है।

प्रबंध में व्याख्यात विषय (या वर्ण्य विषय)

(अभिधा)

शास्त्रीय ढंग से सूत्र-रूप में कहें तो साक्षात् संकेतित[1] अर्थ को कहनेवाला शब्द वाचक कहलाता है। साधारणतया व्यवहार में देखा जाता है कि लोगों में जो 'संकेत' अथवा 'समय' प्रचलित रहता है उसी के सहारे शब्द अपने अर्थ का बोध कराता है अर्थात् केवल शब्द से श्रोता को अर्थ का बोध नहीं हो सकता। किसी अनभिज्ञ से यदि कहा जाय कि 'गाय लाओ' तो वह इस वाक्य से क्या समझ सकता है? उसके लिये इन शब्दों में कोई अर्थ ही नहीं है। वह जानता ही नहीं कि इन शब्दों से किस अर्थ की ओर संकेत किया गया है। पर वही मनुष्य किसी जानकार को कहते सुनता है कि गाय लाओ और देखता है कि दूसरा गाय ले आता है। इन दोनों के इस व्यवहार को देखकर वह वाक्य का अर्थ समझ लेता है। इसी प्रकार व्यवहार से वह 'गाय बाँधो', 'घोड़ा लाओ' आदि वाक्यों का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है। कुछ वाक्यों का ज्ञान हो जाने पर वह अपनी अन्वय-व्यतिरेकवाली बुद्धि से 'गाय' और 'लाओ' आदि को पृथक् पृथक्

वाचक शब्द की शास्त्रीय व्याख्या

---

(१) साक्षात्संकेतितमर्थं योऽभिधत्ते स वाचकः। (काव्यप्रकाश)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

समझने लगता है। पहली बार उसने वाक्य का अर्थ तो समझ लिया था पर उसका व्याकरण न समझ सका था। धीरे धीरे 'गाय' शब्द को कई अन्य शब्दों के साथ उसी व्यक्ति का अर्थ-बोध कराते हुए देखकर उसका अर्थ समझ लिया, अर्थात् यह जान लिया कि गाय शब्द का किस वस्तु-विशेष में संकेत है। इसी प्रकार 'लाओ' क्रिया का कई वाक्यों में अन्वय देखकर व्यतिरेक द्वारा उसका भी संकेत समझ लेता है। अब संकेत[1]-ज्ञान हो जाने से वे ही शब्द उसे अर्थ का बोध कराने लगते हैं।

बालक की भाषा सीखने की प्रक्रिया पर ध्यान देने से संकेत-ज्ञान की बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। एक सयाना आदमी कहता है—'गाय लाओ'। दूसरा उसके आज्ञानुसार गाय ले आता है। बालक यह सब देख-सुनकर उस वाक्य का अर्थ समझ जाता है। आगे चलकर 'गाय बाँधो', 'घोड़ा लाओ' आदि वाक्य भी वह अपने बड़े-बूढ़ों के व्यवहार को देखकर समझने लगता है। तब कहीं उसकी अन्वय-व्यतिरेक द्वारा सोचने की सहज प्रवृत्ति 'गाय' और 'लाओ' का अवयवार्थ भी उसे समझा देती है। पहले बालक व्यवहार से पूरे वाक्य का अर्थ समझता है। यह भाषा-विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुका है। फिर धीरे धीरे **व्यवहार** से ही वह अलग अलग शब्दों का अर्थ समझने लगता है, अर्थात् उसे इस बात का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि किस शब्द का किस अर्थ में संकेत है।

व्यवहार द्वारा संकेत-ग्रह

जब बालक व्यवहार से कुछ शब्द समझने लगता है, गुरुजन उसे बहुत से शब्द व्यवहार के बाहर के भी समझा देते हैं। वह

---

(१) देखो—काव्यप्रकाश—संकेतसहाय एव शब्दः इत्यादि। साहित्य-दर्पण, एकावली आदि ग्रंथों में संकेत-ग्रह का सम्यक् विवेचन हुआ है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उन्हें चुपचाप मान लेता है। आप्त पुरुष बच्चे को एक पदार्थ दिखाता है और कहता है यह पुस्तक है। बालक इस शब्द के संकेत को झटपट समझ जाता है। आगे चलकर बालक **व्याकरण** पढ़ता है; प्रकृति, प्रत्यय आदि का ज्ञान अर्जन करता है। अनेक शब्दों को तथा शब्दों के अनेक रूपों को सहज ही समझने लगता है। कुछ शब्दों का अर्थ वह **उपमान** के बल से लगा लेता है। वह गाय पहचानता है तो 'गवय' की बात सुनकर उसको गाय जैसा एक पशु समझ लेता है। वह मनुष्य का अर्थ व्यवहार से सीख चुका है। इसलिये उपमान की सहायता से वह देव, यक्ष आदि योनियों की भी कल्पना कर लेता है। एक देव शब्द के अजर, अमर आदि अनेक पर्याय वह **कोष** से सीख लेता है। संदेह होने पर वह **वाक्य-शेष** से संकेत-निर्णय करता है। गंगा शब्द का संकेत नदी और लड़की—दोनों में है पर जब इस शब्द का वाक्य में प्रयोग होता है तो दूसरे शब्दों से इसका भी अर्थ स्पष्ट हो जाता है। 'गंगा की धारा में आज कितना वेग है'—इस वाक्य का गंगा शब्द स्पष्टतया नदीवाचक है। 'यव' का अर्थ 'जव' भी होता है और 'कंगुनी' का चावल भी। वाक्यशेष अर्थात् प्रसंग से इसका भी अर्थ स्पष्ट हो जाता है। आर्य लोगों के प्रसंग में यव का अर्थ 'जव' होता है पर म्लेच्छ लोग 'यव' से कंगुनी का चावल समझते हैं। कुछ शब्द समझे हुए शब्दों के साथ आने से अनायास ही समझ में आ जाते हैं। जैसे 'वसंते पिकः कूजति' (वसंत में पिक बोल रही है)—इस वाक्य में पिक शब्द दूसरी भाषा[1] का है पर पाठक 'वसंत में बोलती है'—इतना अंश समझ

संकेत के अन्य सात ग्राहक

(१) 'पिक' शब्द संस्कृत में दूसरी भाषा से आया है। ऐसे अन्य शब्दों का भी मीमांसा-सूत्र के शाबरभाष्य में उल्लेख मिलता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लेने पर पिक शब्द का भी अर्थ लगा लेता है। 'मधुप कमल पर मँडरा रहे हैं' इस वाक्य के 'मधुप' शब्द को कमल आदि शब्दों को समझनेवाला सहज ही लगा लेता है। इस प्रकार **सिद्ध पदों की सन्निधि** से बालक बहुत से शब्दों का संकेत-ज्ञान कर लेता है। इतने पर भी जो शब्द समझ में नहीं आते उन्हें स्पष्ट करने के लिये वह **विवृति** की सहायता लेता है। व्याख्या देशी-विदेशी सभी भाषाओं के शब्द स्पष्ट कर देती है। यदि बालक रसाल शब्द नहीं समझता तो शिक्षक या तो रसाल के रूप-रंग की व्याख्या करके उसका अर्थ समझा देता है अथवा रसाल का ऐसा पर्यायवाची शब्द बताता है जो विद्यार्थी को पहले से ज्ञात हो। उसी भाषा में अथवा दूसरी परिचित भाषा में अनुवाद करके समझाने का ही नाम **विवृति** है।

विचार करने पर अन्य सभी संकेत के ग्राहक व्यवहार में अंतर्भूत हो जाते हैं। व्यवहार से बालक सभी शब्द सीख सकता है; पर अपनी आँखों से देखने सुनने में बड़ा समय लगता है। थोड़े वर्षों का छोटा सा जीवन संसार की असंख्य वस्तुओं का कैसे अनुभव कर सकता है? इसी से ऐसे उपायों से काम लेना पड़ता है जिनसे अधिक से अधिक शब्द कम से कम समय में सीखे जा सकें। कोष, व्याकरण, आप्तोपदेश, विवृति आदि सातों संकेत के ग्राहक ऐसे ही उपाय हैं। यद्यपि **व्यवहार** संकेत के **ग्राहकों**

व्यवहार संकेत-ग्राहकों में प्रधान है

---

(१) आजकल के शिक्षा-शास्त्रीय शब्दों का प्रयोग करें तो व्यवहार को Direct Method और विवृति को Translation Method कह सकते हैं।

(२) देखो—मुक्तावली—शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च। वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में **शिरोमणि** है तथापि इन अन्य उपायों का भी संकेत-ग्रह के लिये कम महत्त्व नहीं है।

इस प्रकार इन व्यवहारादि ग्राहकों द्वारा संकेत का ज्ञान हो जाने पर ही **शाब्द बोध** होता है अर्थात् संकेत की सहायता से ही शब्द द्वारा अर्थ-बोध होता है। अतः प्रत्येक अर्थ में संकेत का होना स्वयं सिद्ध सा है। किसी में **साक्षात् संकेत** रहता है और किसी में **असाक्षात् संकेत**। जिस अर्थ से जिस शब्द का संबंध लोगों में प्रसिद्ध है उस अर्थ में उस शब्द का सीधा साक्षात्-संकेत रहता है, जैसे 'बैल' गाड़ी खींच रहा है—इस वाक्य में **बैल** शब्द का अर्थ लोक-प्रसिद्ध है, इससे बैल शब्द का अपने अर्थ में साक्षात्-संकेत है। पर जब कभी कोई शब्द प्रयोजन-वश किसी अप्रसिद्ध अर्थ से संबंध जोड़ लेता है, उसका संकेत साक्षात् नहीं रह जाता। उस शब्द का एक प्रसिद्ध अर्थ में संकेत रहता है अतः दूसरे अर्थ में उसका संकेत उस प्रसिद्ध अर्थ की परंपरा में से होकर आता है जैसे यह लड़का बैल है—इस वाक्य में बैल शब्द का संकेत 'बैल' में न होकर बैल के सादृश्य में है। बैल शब्द का संकेत मुख्य अर्थ में से होकर दूसरे अर्थ में पहुँचता है। अतः बैल शब्द का 'पशु' में साक्षात्संकेत है और मूर्ख के अर्थ में असाक्षात्संकेत। साक्षात्संकेतित अर्थवाले शब्द को **वाचक** कहते हैं, इससे पहले वाक्य का बैल शब्द ही वाचक है, दूसरे वाक्य का नहीं। यह वाचक शब्द जिस **शक्ति** के द्वारा अपने अर्थ का बोध कराता है उसे **अभिधा** कहते हैं।

वाचक शब्द से अर्थ-बोध कैसे होता है? इस प्रश्न को समझने के लिये संकेत का सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है। संकेत क्या है?

यह ध्यान देने की बात है कि यहाँ 'शक्ति' वैयाकरणों के 'संकेत' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संकेत का ज्ञान कैसे होता है ? संकेत कैसे बनता है ? संकेत से ग्राह्य क्या है ? संकेत काहे में होता है अर्थात् संकेत-विषय क्या है—संकेतित अर्थ का स्वरूप क्या है ? इत्यादि प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है। पहले दो प्रश्नों पर विचार हो चुका है।

शब्द बोध के प्रकरण में संकेत-ज्ञान का महत्त्व

'संकेत' **समय** को कहते हैं। इस शब्द से इस अर्थ का बोध होना चाहिए—इस अर्थ के लिये इस शब्द का प्रयोग करना चाहिए—ऐसा **'समय'** ही संकेत कहलाता है। इस संकेत का ज्ञान प्रधानतया व्यवहार से होता है। अन्य संकेत के ग्राहक व्यवहार के रूपांतर मात्र हैं। यह सब स्पष्ट हो चुका है। संकेत बनने अथवा बनाने का प्रश्न थोड़ा विवादग्रस्त पर बड़ा मनोरम है। जो **नैयायिक** ईश्वरेच्छा, संकेत और शक्ति को पर्याय मानते हैं, वे तो सहज ही उस संकेत का **कर्त्तृत्व ईश्वर** को दे देते हैं पर शब्द के वर्ण तक को नित्य माननेवाले **मीमांसकों** ने संकेत को शक्ति से भिन्न मानकर **लोकेच्छा** को उसका विधाता माना है। उनके अनुसार शब्द नित्य है। शब्द की शक्ति नित्य है; पर उस शक्ति का ग्राहक (अर्थात् ज्ञान करानेवाला) संकेत अनित्य है। उसे लोकेच्छा बनाती बिगाड़ती है। यहाँ लोकेच्छा व्यक्तिगत इच्छा का नाम नहीं है किंतु उससे सर्वसाधारण की इच्छा का अभिप्राय है। लोकेच्छा बिलकुल पाश्चात्य दार्शनिकों की General Will है। मीमांसकों ने इस लोकेच्छा का प्रभुत्व मानकर शब्द के साम्राज्य में प्रजातंत्र की घोषणा कर दी थी तो भी शब्द की नित्यता अक्षुण्ण बनी रही। शब्द तो न जाने कब से चला आ रहा है और न जाने कब तक चलेगा। वह अनादि है, अनंत है और इसी से नित्य भी है।

संकेत का स्वरूप

संकेत का ग्राहक

संकेत का कर्त्ता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

केवल संकेत-निर्धारण करना प्रयोक्ता (लोक) के हाथ में है। शब्द सदा किसी न किसी रूप में रहता है; जब लोग जैसा संकेत बना लेते हैं वैसा ही (संकेतित) अर्थ उस शब्द से भासने लगता है। विश्व में कहीं न कहीं अर्थ उलझा पड़ा रहता है; जब लोग संकेत को शब्द की सेवा में भेजते हैं, शब्द उसकी सहायता से अर्थ को सुलझाकर प्रकाश में ला देता है। लोगों को अर्थ-बोध होने लगता है। अर्थ-बोध वास्तव में होता है शब्दार्थ-संबंध के ज्ञान से—शब्द-शक्ति के ज्ञान से; पर संकेत ही उस संबंध का परिचायक होता है—उस शक्ति का ज्ञान कराता है, अतः संकेत का महत्त्व पहले आँखों के सामने आता है। संकेत होता भी है अर्थ-बोध का **सहकारी कारण**। इस प्रकार मीमांसकों के अनुसार लोकेच्छा संकेत बनाती है। लोक-व्यवहार से संकेत-ग्रह होता है। संकेत द्वारा शक्ति-ग्रह होता है और शक्ति द्वारा अर्थ-ग्रह अर्थात् शाब्द बोध होता है।

मीमांसा और शब्द बोध

वैयाकरण और आलंकारिक दोनों ही मीमांसकों की इन सभी बातों का समर्थन करते हैं। वे भी लोक को प्रभु मानते हैं—शक्ति को **संकेतग्राह्य स्वतंत्र पदार्थ** मानते हैं। हाँ, वे लोक के पर्यवेक्षण में एक पग और आगे बढ़ गए हैं। वे शक्ति को नित्य तो मानते हैं। **शक्ति**[1] शब्द में सदा रहती है—कभी **सुप्त**, कभी **प्रबुद्ध**; पर उसका आश्रय शब्द नित्य भी है, अनित्य भी। इस प्रकार वे सिद्धांत और व्यवहार का समन्वय कर लेते हैं। **शब्द के तत्त्व**[2] को वे नित्य मानते हैं

वैयाकरणों और आलंकारिकों ने न्याय तथा मीमांसा का समन्वय किया है

---

(१) देखो—सम्बन्धस्यापि व्यवहारपरम्परयानादित्वान्नित्यता। (कैयट) अथवा नित्यो ह्यर्थवतामर्थैरभिसंबंधः। (महाभाष्य, Vol. I, p. 7.)

(२) पतंजलि ने शब्द के दो रूप माने हैं—अव्यक्त स्फोट और व्यक्त

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पर **व्यावहारिक शब्द** को वे भी नैयायिकों की भाँति **अनित्य** मानते हैं। मीमांसकों की नाईं वे ध्वनि और वर्ण को नित्य नहीं मानते। व्यवहार से ही ध्वन्यात्मक शब्द की अनित्यता स्पष्ट है। शब्द के नाद और रूप में लोप, आगम, विपर्यय, विकार आदि कार्य प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं।

इसी प्रकार संकेत का विषय क्या है, अर्थात् संकेत किस वस्तु में होता है—इस प्रश्न पर भी बड़ा मतभेद है। नैयायिक, मीमांसक, बौद्ध आदि सभी अपना अपना एक निराला 'वाद' लेकर सामने आते हैं। नैयायिक तो सदा से व्यवहार और लोक की दुहाई देते आए हैं। यद्यपि तर्क के मंदिर में पहुँचने पर वे लोक को बिलकुल ही भूल जाते हैं तो भी वे प्रारंभ सामने की देखी-सुनी वस्तुओं से ही करते हैं। नित्य के व्यवहार में व्यक्ति ही सामने आता है। व्यक्ति में ही प्रवृत्ति और निवृत्ति की योग्यता रहती है। 'गाय लाओ' में गो-व्यक्ति का लाना और 'गाय न लाओ' में गो-व्यक्ति ही का न लाना अभिप्रेत है। लाना और न लाना आदि सप्रयोजन क्रियाएँ गो-व्यक्ति में ही घटित हो सकती हैं; अतः व्यक्ति में संकेत मानना चाहिए। प्रयोक्ता सदा शब्द से एक अथवा अनेक व्यक्तियों का बोध कराता है अतः शब्द का वाच्यार्थ व्यक्ति[1] ही हो सकता है। यही व्यक्ति जाति[2] का उपलक्षण होता है, इसी लिये शब्द से जाति का भी बोध होता है।

संकेतित अर्थ अर्थात् संकेत का विषय

केवल व्यक्तिवाद

ध्वनि। दोनों के लिये वे शब्द का प्रयोग करते हैं। देखो—'तस्मात् ध्वनिः शब्दः' और 'तर्हि स्फोटः शब्दः'। (महाभाष्य)

(१) शब्दस्य व्यक्तिरेव वाच्या। (प्रदीप)

(२) जाते स्तूपलक्षणभावेनाश्रयणादानन्त्यादिदोषानवकाशः। (कैयट)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यह **नैयायिकों का व्यक्तिवाद** व्यवहार तथा सिद्धांत दोनों दृष्टियों से सुंदर है। उसकी व्यवहारोपयोगिता तो प्रत्यक्ष ही है और संकेत को ईश्वर-कृत मानने से सिद्धांत में भी कोई दोष नहीं आ सकता। ईश्वर सर्व-समर्थ है। उसने अखिल व्यक्तियों में संकेत निश्चित कर दिया है। वक्ता और प्रयोक्ता का संकेत-ज्ञान ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा त्यों त्यों अर्थज्ञान आपसे आप बढ़ता जायगा।

मीमांसकों द्वारा खंडन

पर जो संकेत को ईश्वर-कृत न मानकर लोक-कृत मानते हैं उन्हें स्वभावतः इस वाद में दोष देख पड़ते हैं। यदि सभी व्यक्तियों में संकेत माना जाय तो एक पद की अर्थोपस्थिति ही असंभव हो जायगी। व्यक्ति अनंत होते हैं। उन सबको देख-सुनकर उनमें संकेत-स्थापना करना असंभव है। और यदि एक व्यक्ति में संकेत मानें तो नियम का व्यभिचार होगा। शब्द अनेक व्यक्तियों का बोध कराता है, यह व्यवहार से सिद्ध है। तब एक व्यक्ति में संकेत का नियम कैसे निर्दोष माना जा सकता है। इस प्रकार '**आनंत्य**'[1] और '**व्यभिचार**' के दोषों से दूषित होने के कारण केवल 'व्यक्तिवाद' ग्राह्य नहीं हो सकता।

अतः **मीमांसकों** ने **जाति**[2] में संकेत की कल्पना की। जाति और व्यक्ति—सामान्य और विशेष—Universal[3] and Particular का भेद सभी मानते हैं। एक आकृतिवाली अनेक

---

(१) देखो—तथाऽप्यानन्त्याद्व्यभिचाराच्च तत्र संकेतः कर्तुं न युज्यते इति। (काव्यप्रकाश २।७)

(२) आकृतिस्तु क्रियार्थत्वात् (पू० मी० १।३।३३) और आकृतिरेव शब्दार्थ इतिसिद्धम् (तंत्रवार्तिक)। यहाँ मीमांसा में आकृति 'जाति' का पर्याय मानी जाती है।

(३) Universal और Particular के विचार के लिये देखो—Stout's Analytic Psychology Vol. II. (chapters on Thought and Language).

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

व्यक्तियों में नित्य रहनेवाली एक सामान्य सत्ता 'जाति' कहलाती है। यह व्यक्त्याश्रित रहती है, इससे मीमांसा-सिद्धांत के अनुसार वह (जाति) व्यक्ति का विशेषण मानी जाती है। जब शब्द का जाति में संकेत होता है तो आप से आप व्यक्ति का आक्षेप[1] (अनुमान अथवा लक्षणा) द्वारा बोध हो जाता है। पहले शब्द से सामान्य[2] सत्ता (अर्थात् जाति) का बोध होता है; पीछे से व्यक्ति के लिये आकांक्षा उठती है, वह आक्षेप द्वारा शांत हो जाती है।

जातिवाद

इस जातिवाद से व्यवहार का स्पष्ट विरोध है। व्यवहार में शब्द द्वारा पहले व्यक्ति की ही उपस्थिति होती है। शब्द का मुख्य अर्थ व्यक्ति ही देख पड़ता है, पर जातिवाद के अनुसार जाति को **मुख्यार्थ** और व्यक्ति को **आक्षिप्त** अर्थात् लक्ष्यार्थ मानना पड़ता है। शब्द एक बार जब जाति का बोध करा चुकता है तो उसकी शक्ति[3] क्षीण हो जाती है अर्थात् व्यक्ति को वह लक्षणा (आक्षेप) द्वारा ही उपस्थित कर सकता है अभिधा द्वारा नहीं। मीमांसा के अनुसार व्यक्ति मुख्यार्थ नहीं हो सकता। इस प्रकार व्यक्ति को अमुख्य और लक्ष्य अर्थ मानना नैयायिकों को समीचीन नहीं प्रतीत होता। अतः वे लोग **जाति-विशिष्ट व्यक्ति** में शक्ति (अर्थात् संकेत) मानते हैं। घट शब्द एक ही रहता है पर उससे उसी आकृति के अन्य घटों का भी बोध होता है। अतः 'घट' शब्द 'व्यक्ति' के साथ ही साथ (कंबुग्रीवादिमत्व) आकृति द्वारा

खंडन

जाति-विशिष्टव्यक्तिवाद (अथवा विशिष्टशक्तिवाद)

---

(१) जातेः प्रथममुपस्थितत्वात् व्यक्तिलाभस्तु आक्षेपादिनेति। (कैयट)

(२) प्रथमं च सामान्यमेव शब्दाद्गम्यते पश्चाच्च व्यक्तिष्वाकांक्षामात्रं जायते ततस्तदेवाभिधेयं न व्यक्तिविशेषः। (शास्त्रदीपिका)

(३) 'विशेष्यं नाभिधा गच्छेत् क्षीणशक्तिर्विशेषणे' इति न्यायः।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

व्यंग्य जाति का भी बोध कराता है। इस प्रकार इस 'वाद' में केवलव्यक्तिवाद और केवलजातिवाद का सुंदर समन्वय हो जाता है। व्यक्तिवाद के अनुसार व्यक्ति शब्द का मुख्यार्थ है। जाति व्यक्ति से उपलक्षित होती है। जातिवाद में क्रम उलट जाता है। जाति की उपस्थिति पहले होती है। फिर जाति में ही व्यक्ति का आक्षेप कर लिया जाता है। जाति-विशिष्टवाद के अनुसार विशेषण और विशेष्य—जाति और व्यक्ति—दोनों बराबरी पर रहते हैं। शब्द से दोनों की अर्थोपस्थिति एक ही साथ होती है। इस प्रकार **जाति और व्यक्ति**[1] दोनों ही शब्द के **मुख्य अर्थ** होते हैं।

नागेश, दीक्षित आदि वैयाकरण इसी **विशिष्ट-शक्तिवाद** को मानते थे। काशी के नवीन संप्रदाय ने इस वाद में कुछ सुधार किया है। व्यवहार सदा जाति और व्यक्ति दोनों का शब्द से एक ही साथ बोध नहीं कराना चाहता। अतः इन नवीन वैयाकरणों ने विशिष्टवाद का थोड़ा और परिष्कार किया। उन्होंने शब्द में **खण्डशः शक्ति** का प्रतिपादन किया; अर्थात् उनके अनुसार किसी शब्द से जाति और व्यक्ति की एक साथ उपस्थिति तो होती है पर वक्ता इच्छानुसार चाहे जिस अंश का **मोष** (लोप) अथवा (**आरोप**) कर सकता है; इस प्रकार शब्द का व्यावहारिक अर्थ कभी केवल जाति हो सकता है, कभी केवल व्यक्ति। इस परिष्कृत रूप में यह वाद काशी में आज भी चल रहा है। आजकल के वैयाकरणों के समाज में **परिष्कार**[2] का बड़ा आदर है।

खंडशः शक्तिवाद
(परिष्कार स्कूल)

(१) देखो—व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थाः। (न्यायसूत्र II. २। ६८) और.....जाति-विशिष्टव्यक्तौ एव शक्तिकल्पनात्। (तर्क-दीपिका)

(२) इस परिष्कार के पोषक काशी के तीन विद्वान् थे—काशीनाथ, राजाराम तथा बालशास्त्री। ये तीनों स्वर्गीय वैयाकरण परिष्कार-स्कूल के त्रिमूर्ति कहे जाते हैं। इनके अध्ययन से अर्थ-विचार का बड़ा उपकार हो सकता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस प्रकार न्याय का आश्रय लेनेवाले वैयाकरण इस विशिष्ट, शक्तिवाद से संतुष्ट हो जाते हैं, पर आलंकारिक और साहित्यज्ञ प्राचीन वैयाकरणों के **उपाधिवाद** को ही सुंदर समझते हैं। पतंजलि, भर्तृहरि आदि प्राचीन वैयाकरणों का दर्शन ही भिन्न था। वे न्याय के सिद्धांतों को ही नहीं मानते थे फिर उन सिद्धांतों के आधार पर सिद्ध वाद को कैसे मान सकते थे। वैयाकरणों का दर्शन बिलकुल वेदांतियों का अद्वैतवाद जैसा है। यह विश्व उसी एक की उपाधि है। व्यक्ति एक ही है पर वह उपाधि द्वारा इतने रूप धारण करता है। उपाधि ही उसे प्रवृत्ति-निवृत्ति योग्य बनाती है। उपाधि ही समस्त व्यापार और व्यवहार का कारण है। अतः **उपाधि** में ही शब्द का **संकेत** होना चाहिए। शब्द उपाधि का ही ग्रहण करता है। (व्यक्ति की) यह उपाधि दो प्रकार की होती है—**वस्तुधर्म** और **वक्तृयदृच्छासन्निवेश**। कभी वक्ता वस्तु का धर्म देखकर नाम देता है और कभी किसी का मनमाना नाम रख लेता है। 'गो' शब्द से गोत्व धर्म का बोध होता है अतः गो शब्द वस्तु-धर्म का वाचक है; पर यदि पिता अपने लड़के का नाम कृष्ण अथवा सुमन रखता है तो वह केवल अपनी इच्छा से काम लेता है। ऐसा वक्ता के इच्छानुसार प्रयुक्त नाम 'वक्तृयदृच्छासन्निवेशित उपाधि' कहलाता है। वस्तु-धर्म उपाधि के दो और भेद होते हैं—**सिद्ध** और **साध्य**। सिद्ध वस्तु-धर्म उपाधि के भी दो भेद होते हैं। एक प्राणप्रद और दूसरा विशेषाधानहेतु। जाति वस्तु को प्राण देती है और गुण उसकी विशेषता और भिन्नता प्रकट करता है। अतः जाति वस्तु की प्राणप्रद उपाधि है और गुण विशेषाधानहेतु उपाधि है। जाति और गुण **सिद्ध उपाधियाँ** हैं पर **क्रिया**[1]

उपाधिवाद या जात्यादिवाद

(१) देखो—वाक्यपदीय—गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम्।
बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः क्रियेति व्यपदिश्यते॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

साध्य होती है अतः वह साध्य वस्तुधर्म उपाधि है। इस प्रकार उपाधि[1] के चार भेद होते हैं—जाति,[2] गुण, क्रिया और द्रव्य (अर्थात् संज्ञा अथवा व्यक्ति)। इन चारों में ही शब्द का संकेत रहता है। इसी से प्राचीन वैयाकरण और मम्मट, जगन्नाथ आदि आलंकारिक **उपाधिवादी** अथवा **जात्यादिवादी** कहे जाते हैं।

यह संकेतित अर्थ का चतुर्धा भेद व्यवहार में बड़ा उपादेय होता है। व्यंजना आदि काव्योपेक्षित वस्तुओं की भी इससे सहज ही में सिद्धि हो जाती है। पर मीमांसक इन उपाधिवादियों के सिद्धांत को सदोष समझते हैं। उपाधि और विशेषण में कोई भेद नहीं है। इससे मीमांसक कहते हैं कि केवल जाति को ही उपाधि मानने से सब काम चल सकता है। गुण, क्रिया तथा (व्यक्तिवाचक) संज्ञा, सभी में तो एक सामान्य जाति होती है। हिम, शंख, दुग्ध आदि अनेक पदार्थ सफेद होते हैं पर इन सबकी

मीमांसकों का आक्षेप और उसका निराकरण

---

(१)

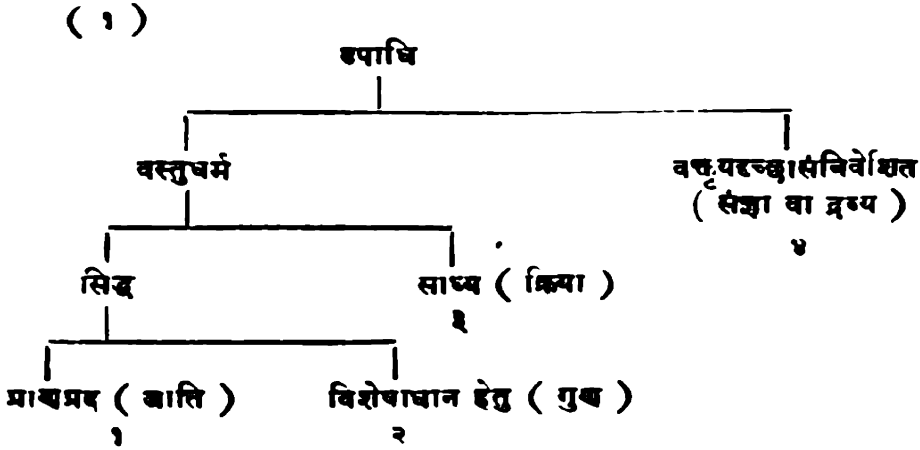

(२) देखो महाभाष्य—चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः जातिशब्दाः गुणशब्दाः क्रियाशब्दाः यदृच्छाशब्दाश्चेति।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सफेदी एक सी नहीं होती। भैंस के कालेपन और लड़के के कालेपन में अंतर होता है। अतः इन सब भिन्न भिन्न गुणों में एक जाति माननी होती है। इसी प्रकार सेवा करना, परिश्रम करना, भोजन करना आदि क्रियाओं में 'करना' का एक अर्थ नहीं है पर करने का सामान्य भाव उन सभी क्रियाओं में है अतः क्रिया में भी एक जाति मानी जा सकती है। व्यक्तिवाचक संज्ञा में भी जाति का लक्षण पाया जाता है। किसी का नाम राम है। वह बालक था तब भी उसका यही नाम था। अब वह युवा है तब भी वही नाम है। शत्रु-मित्र, तोता-मैना आदि सभी राम-नाम से उसे पुकारते हैं पर सबके अभिप्रेत अर्थों में भेद रहता है। अतः इन भिन्न भिन्न रामों में भी एक सामान्य सत्ता होती है। इस तरह विश्व का केवल जाति और व्यक्ति इन्हीं दो भेदों में विभाग हो सकता है। पर वैयाकरण इस भ्रम का निराकरण कर देता है। गुण क्रिया आदि की अनेक होने की बात वास्तविक नहीं है। जिस प्रकार एक ही मुख छोटे दर्पण में छोटा, बड़े में बड़ा, तलवार में लंबा और गोल रकाबी में गोल दिखाई पड़ता है उसी प्रकार एक 'सफेद' गुण शंख, दूध आदि में आश्रय-भेद[1] से भिन्न और अनेक सा प्रतीत होता है। इसी प्रकार क्रिया अथवा संज्ञा भी सदा एक ही रहती है। अतः जाति, गुण, किया तथा द्रव्य—चारों प्रकार के अर्थों में शब्द का संकेत मानना पड़ता है।

संकेत का यह साधारण परिचय वाचक शब्द और उसकी शक्ति अभिधा—दोनों का स्वरूप स्पष्ट कर देता है। जब संकेत सीधे समझ में आ जाय तब शब्द को **वाचक**, उसके अर्थ को **वाच्य** और उस शब्द के अर्थ-बोध करानेवाले व्यापार को **अभिधा** कहते हैं। शब्द की यह अभिधा-शक्ति मुख्य और

(१) देखो—मुकुल-कृत अभिधावृत्तिमातृका, पृ० ५।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अग्रिम होने से 'मुख्या' अथवा 'अग्रिमा' भी कही जाती है। वह कभी कभी केवल 'शक्ति'[1] नाम से ही पुकारी जाती है; क्योंकि कुछ लोग अभिधा को ही शब्द की वास्तविक शक्ति समझते हैं।

अभिधा के तीन भेद

इस अभिधा शक्ति के तीन सामान्य भेद होते हैं—**रूढ़ि, योग और योगरूढ़ि**। इसी शक्ति-भेद के अनुसार शब्द और अर्थ भी रूढ़, यौगिक अथवा योग-रूढ़ होते हैं। मणि, नूपुर, गौ, हरिण आदि शब्द, जिनकी व्युत्पत्ति नहीं हो सकती, रूढ़ कहलाते हैं। इन शब्दों में रूढ़ि की शक्ति व्यापार करती है। और जिन शब्दों की शास्त्रीय प्रक्रिया द्वारा व्युत्पत्ति की जा सकती है वे यौगिक कहलाते हैं। जैसे पाचक, सेवक आदि शब्द यौगिक हैं; क्योंकि उनकी व्युत्पत्ति हो सकती है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति तो की जाती है पर व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ शब्द के मुख्य अर्थ से मेल नहीं खाता। ऐसे शब्द योगरूढ़[2] कहे जाते हैं। पंकज का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है 'पंक से उत्पन्न होनेवाला'। पर अब यह शब्द एक विशेष अर्थ में रूढ़ हो गया है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो केवल धातुएँ ही रूढ़ कही जा सकती हैं। चंद्रालोक[3] के कर्ता जयदेव ने भी धातुओं को ही निर्योग माना है। धातु के अतिरिक्त अन्य शब्दों को रूढ़

---

(१) देखो—प० ल० मंजूषा, पृ० ४।

(२) योगरूढ़ि की दूसरी परिभाषा भी है। जिन शब्दों का यौगिक अर्थ एक विशेष अर्थ में सीमित अर्थात् रूढ़ हो जाता है जैसे पंकज अथवा अब्धि कमल और समुद्र के अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। यही परिभाषा अधिक सुंदर प्रतीत होती है।

(३) चंद्रालोक में जयदेव ने रूढ़, यौगिक तथा योगरूढ़ शब्दों का बड़ा सुंदर विवेचन किया है। देखो—अव्यक्तयोगनिर्योगयोगामासैस्त्रिधाऽदिमः। इत्यादि (१।१०-१३ चंद्रालोक)।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मानना अज्ञान की स्वीकृति मात्र है। सभी शब्दों की उत्पत्ति धातु और प्रत्यय के योग से होती है। जिन शब्दों की उत्पत्ति अज्ञात रहती है उन्हें व्यवहारानुरोध से रूढ़ मान लिया जाता है। वास्तव में वे 'अव्यक्तयोग' मात्र हैं, उनके योगार्थ का हमें ज्ञान नहीं है। अतः धातु में हम शब्द की निर्योग और रूढ़ अवस्था का दर्शन करते हैं। दूसरी अवस्था में धातु से प्रत्यय का योग होता है और यौगिक शब्द सामने आता है। संस्कृत व्याकरण की पाँचों वृत्तियाँ[1] इस अवस्था का सुंदर निदर्शन कराती हैं। पहले धातु से कृत् प्रत्यय लगता है जैसे पच् धातु से पाचक बनता है। फिर धातुज शब्द से तद्धित प्रत्यय लगता है तो पाचकता आदि शब्द बन जाते हैं। इन दोनों प्रकार के यौगिक शब्दों से समास बन जाते हैं। एक यौगिक शब्द दूसरे यौगिक शब्द से मिलकर एक समस्त (यौगिक) शब्द को जन्म देता है। कभी कभी दो शब्द इतने अधिक मिल जाते हैं कि उनमें से एक अपना अस्तित्व ही खो बैठता है। शब्द की इस वृत्ति को एकशेष कहते हैं। जैसे माता और पिता का योग होकर एक यौगिक शब्द बनता है 'पितरौ'। इन चार वृत्तियों से नाम-शब्द ही बनते हैं। पर कभी कभी नाम के योग से धातुएँ भी बनती हैं। जैसे पाचक से पाचकायते बनता है। ऐसी योगज धातुएँ नामधातु कहलाती हैं और इनकी वृत्ति 'धातुवृत्ति' कहलाती है।

रूढ़ि, योग तथा योग-रूढ़ि का भाषा-वैज्ञानिक विचार

विचारपूर्वक देखा जाय तो भाषा के सभी यौगिक शब्द इन पाँच वृत्तियों के अंतर्गत आ जाते हैं। कृदंत, तद्धितांत, समास, एकशेष और नामधातुओं को निकाल लेने पर भाषा में केवल

---

(१) 'वृत्ति' व्याकरण में किसी भी ऐसी यौगिक रचना को कहते हैं जिसका विग्रह किया जा सके।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दो ही प्रकार के शब्द शेष रह जाते हैं—**धातु** और **प्रातिपदिक** (अव्युत्पन्न रूढ़ शब्द)। इस प्रकार भाषा रूढ़ और यौगिक—इन्हीं दो प्रकार के शब्दों से बनती है पर अर्थातिशय की दृष्टि से एक प्रकार के शब्द ऐसे होते हैं जो यौगिक होते हुए भी रूढ़ हो जाते हैं। ऐसे शब्द योगरूढ़ कहे जाते हैं। यह शब्द की तीसरी अवस्था है। जैसे **धवलगृह** का अर्थ होता है 'सफेदी किया हुआ घर'; पर धीरे धीरे धवलगृह का—प्रयोगातिशय से—'महल' अर्थ होने लगा। इस अवस्था में धवलगृह योगरूढ़ शब्द है। धवलः गृहः और धवलगृह का अब पर्याय जैसा व्यवहार नहीं हो सकता। यही योगरूढ़ि संस्कृत के **नित्य समासों** का मूल कारण है। कृष्णसर्पः है तो यौगिक शब्द; पर धीरे धीरे उसका संकेत एक सर्प-विशेष में रूढ़ हो गया है अतः वह समस्तावस्था में ही उस विशेष अर्थ का बोध करा सकता है, अर्थात् कृष्णसर्पः में नित्य समास है। कुछ विद्वानों ने तो सभी समासों को योगरूढ़ माना है। विग्रह-वाक्य से समास में अर्थ-वैशिष्ट्य अवश्य रहता है; इसी से नैयायिकों के अनुसार समास[1] में एक विशेष शक्ति आ जाती है। सच पूछा जाय तो प्रयोगातिशय से समृद्ध भाषा के अधिक शब्दों में योगरूढ़ि ही पाई जाती है। अर्थातिशय के विद्यार्थी के लिये योगरूढ़ि[2] का अध्ययन बड़ा लाभकर होता है।

(लक्षणा)

भाषा और बोली दोनों में शब्दों का मुख्यार्थ ही सदा पर्याप्त नहीं होता। प्रयोक्ता असाक्षात्संकेतित अर्थों में भी कभी कभी शब्दों का प्रयोग करते हैं। शब्दों को अपने मुख्य अर्थ से संबद्ध दूसरे अर्थों का बोध कराना पड़ता है। कभी तो ऐसी रूढ़ि बन जाती है जिससे वे

लक्षणा का स्वरूप

(१) समासे खलु भिन्नैव शक्तिः। (शब्दशक्तिप्रकाशिका)
(२) योगरूढ़ि की दूसरी परिभाषा भी मिलती है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सहज ही अपने मुख्य अर्थ को छोड़ दूसरे अर्थ को लक्षित करने लगते हैं; और कभी कभी प्रयोक्ता का प्रयोजन व्यंजित करने के लिये उन्हें अपने मुख्य अर्थ से भिन्न किसी दूसरे अर्थ का बोध कराना पड़ता है। जैसे 'आजकल मेरे गाँव में बड़ा मेल है'—इस वाक्य का 'गाँव' शब्द रूढ़ि से गाँव में रहनेवालों का बोध कराता है। और एक 'हड्डी की ठठरी' सामने आकर खड़ी हो गई—इस वाक्य में 'हड्डी की ठठरी' का सप्रयोजन प्रयोग हुआ है। वक्ता किसी मनुष्य की दुर्बलता और कृशता का आधिक्य व्यंजित करना चाहता है। इसी से 'हड्डी की ठठरी' अपने मुख्य अर्थ को छोड़ एक क्षीण और दुर्बल मनुष्य को लक्षित कर रही है। ऐसे रूढ़ि अथवा प्रयोजन के अनुरोध से असाक्षात्संकेतित अर्थ में प्रयुक्त शब्द **लक्षक** कहलाते हैं। उनसे बोध्य अर्थ **लक्ष्य** कहलाते हैं और उनकी अर्थ-बोध कराने की शक्ति **लक्षणा** कहलाती है।

लक्षणा के तीन हेतु

विचारपूर्वक देखने से स्पष्ट हो जाता है कि लक्षणा में तीन[1] बातें आवश्यक होती हैं। सबसे पहले शब्द के **मुख्यार्थ का बाध** होना चाहिए अर्थात् जब वाक्य में शब्द का प्रसिद्ध अर्थ ठीक नहीं बैठता तभी लक्षणा की संभावना होती है। दूसरी बात यह है कि मुख्यार्थ से लक्ष्यार्थ का कुछ न कुछ **संबंध** अवश्य होना चाहिए। शब्द लक्षणा से उसी अर्थ का बोध करा सकता है जिसका उसके प्रधान और प्रसिद्ध अर्थ से कुछ न कुछ संसर्ग हो। और लक्षणा के लिये तीसरी आवश्यक बात यह है कि **रूढ़ि** अथवा **प्रयोजन** उसका निमित्त होना चाहिए। इन तीनों हेतुओं में से एक के भी अभाव में लक्षणा का व्यापार असंभव हो जाता है। बिना प्रयोजन अथवा रूढ़ि के कोई शब्द दूसरे अर्थ की ओर जायगा ही क्यों?

(१) मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्। (काव्यप्रकाश २।९)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

और योग अर्थात् संबंध[1] तो लक्षणा का प्राण है। संबंध लक्षणा का दूसरा नाम है। पर कभी कभी शब्द का मुख्यार्थ-बाध नहीं होता तो भी शब्द दूसरे अर्थ का बोध कराने लगता है। जैसे एक लड़के ने संध्या को सिनेमा जाने का निश्चय कर लिया है। और जब वह कहता है, "संध्या हो गई" तब वह 'संध्या' से सिनेमा जाने का समय सूचित करता है। यहाँ 'संध्या' का मुख्यार्थ भी बना रहता है और उससे एक भिन्न अर्थ भी निकल आता है। ऐसे शब्दों में लक्षणा नहीं मानी जाती; क्योंकि यहाँ मुख्यार्थ-बाध-वाला हेतु विद्यमान नहीं है।

लक्षणा का सामान्य वर्गीकरण

भाषा में और विशेषत: साहित्यिक भाषा में लक्षणा के न जाने कितने रूप देखने को मिलते हैं। आधुनिक अर्थातिशय[2] के विज्ञे-चकों ने उनका बड़ा सविस्तर वर्णन किया है। भाषा की अर्थवृद्धि लक्षणा से ही अधिक होती है। अत: लक्षणा के अनेक[3] भेद हो सकते हैं। पर सामान्य दृष्टि से लक्षणा के चार भेद किए जा सकते हैं। कभी कभी शब्द अपने मुख्यार्थ को बिलकुल छोड़ देता है, केवल लक्ष्यार्थ का बोध कराता है। शब्द के इस व्यापार को लक्षणलक्षणा कहते हैं; कभी कभी शब्द अपना अर्थ भी बनाए रखता है, उसे छोड़ता नहीं और साथ ही दूसरे अर्थ को भी लक्षित करने लगता है अर्थात् दूसरे अर्थ का अपने में उपादान कर लेता है। ऐसे शब्द में उपादान लक्षणा होती है। कभी कभी एक शब्द के अर्थ पर दूसरे

---

(१) मम्मट के शब्द-व्यापार-विचार में संबंध का विशद वर्णन दिया हुआ है। देखो—पृष्ठ ८-९।

(२) Semantics.

(३) इस दृष्टि से पढ़ने पर जयदेव-कृत चंद्रालोक का नवम मयूख रहस्यपूर्ण देख पड़ता है। उस तार्किक ने एक पूरा मयूख (लक्षणा के भेद स्पष्ट करने में) अकारण ही नहीं व्यय किया है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शब्द के अर्थ का आरोप किया जाता है। आरोप सहित होने के कारण ऐसी लक्षणा सारोपा कहलाती है। और कभी कभी यही आरोप इतना अधिक बढ़ जाता है कि आरोप का आधार (अर्थात् विषय) आरोप्यमाण में अपना अस्तित्व खो बैठता है, विषय का विषयी में अध्यवसान हो जाता है। इस स्थल में होनेवाली लक्षणा साध्यवसाना कही जाती है।

सुविधा के लिये **सारोपा** और **साध्यवसाना** के दो दो भेद और कर लिए जाते हैं। आरोप-विषय और आरोप्यमाण के बीच कोई न कोई संबंध अवश्य रहता है। कभी दोनों में किसी गुण का सादृश्य रहता है, कभी कार्यकारणभाव, कभी अंगांगिभाव, कभी तादर्थ्य, तात्कर्म्य आदि कोई संबंध। गुण-सादृश्य से होनेवाली लक्षणा 'गौणी' और शेष अन्य संबंधों से सिद्ध होनेवाली 'शुद्धा' कही जाती है। पहले चार विभाग अर्थानुसार किए गए थे; ये अंतिम दो विभाग संबंध की दृष्टि से किए गए हैं। इस प्रकार लक्षणा **छः प्रकार**[1] की मानी जाती है। यथा—

लक्षणा के छः भेद

(१) लक्षणलक्षणा, (२) उपादान लक्षणा, (३) गौणी सारोपा लक्षणा, (४) गौणी साध्यवसाना लक्षणा, (५) शुद्धा सारोपा लक्षणा, (६) शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा।

लक्षणा का यह **षड्धा विभाग**[1] बड़ा व्यावहारिक और व्यापक है। शब्द के सभी लाक्षणिक प्रयोग इसके अंतर्गत आ जाते हैं। उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायगा।

---

(१) लक्षणलक्षणा और उपादान लक्षणा में सादृश्य संबंध-निमित्त नहीं रहता; वे केवल शुद्धा ही होती हैं। किसी किसी के अनुसार उनके भी शुद्धा और गौणी, दो दो भेद होते हैं। देखो—साहित्य-दर्पण (२।६)। पर यह भेद व्यावहारिक नहीं होता।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(१) लक्षणलक्षणा

(१) **पंजाब** वीर है ।

(२) वह **गाँव** भूखों मर रहा है ।

(३) दोनों **घरों** में बड़ी लड़ाई है ।

(४) आपने उसका घर नीलाम कराके उसका बड़ा **उपकार** किया है । मैं भी आपके **सौजन्य** पर **मुग्ध** हूँ ।

(५) आप परिश्रम इतना **अधिक** करते हैं कि आपका सफल होना असंभव दीखता है ।

प्रथम तीन वाक्यों में पंजाब, गाँव और घर—इन तीनों शब्दों ने अपना मुख्यार्थ बिलकुल छोड़ दिया है, उनसे केवल वहाँ 'रहने-वालों' का बोध होता है । अतः उनमें लक्षणलक्षणा स्पष्ट है । चौथे और पाँचवें वाक्यों में लक्षणा के विचित्र उदाहरण हैं । यहाँ उपकार, सौजन्य, मुग्ध, अधिक आदि शब्दों से अपकार, दौर्जन्य आदि विपरीत अर्थों का बोध होता है । अपने अर्थ का त्याग होने से इनमें भी लक्षणलक्षणा मानी जाती है

(२) उपादान लक्षण

(१) **हाथ-पैर** बचाकर काम करो ।

(२) तुम्हारे सभी घोड़े तेज हैं पर वह **काला** बेजोड़ है ।

(३) **लाल पगड़ी** आई और वह घर में घुसा ।

(४) कंवल दो **बंदूकों** के भय से इतने **भाले-बरछे** सब भाग खड़े हुए ।

(५) दही रखा है । **कौए** से बचाना ।

'हाथ-पैर' से शरीर का लक्ष्यार्थ निकलता है । शरीर में हाथ-पैर का भी उपादान हो जाता है । इसी प्रकार 'काला' का अर्थ काला घोड़ा । यहाँ 'काला' का स्वार्थ छूटता नहीं है । आगे के वाक्य में लाल पगड़ी से सिपाही का बोध होता है । यहाँ भी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पगड़ी का मुख्यार्थ साथ रहता है, छूटता नहीं है। इसी प्रकार 'बंदूक' और 'भाले-बरछे' इन अस्त्रों को लिए हुए लोगों का बोध कराते हैं। इन अस्त्रों का उपादान स्पष्ट ही है। भय बंदूक और उसके चलाने-वाले पुरुष दोनों से ही होता है। अंतिम वाक्य के '**कौए**' से कुत्ता-बिल्ली, कीट-पतंगादि दही को दूषित करनेवाले सभी जंतुओं का अभिप्राय लिया जाता है। इस विचित्र लक्षणा में भी 'कौआ' शब्द का अर्थ छूटा नहीं है। कौओं का अर्थ और अधिक बढ़ गया है।

(३) गौणी सारोपा लक्षणा

(१) वह बालक **सिंह** है।

(२) उसका मुखकमल **खिल** उठा।

(३) वह स्त्री गाय नहीं, **साँपिन** है।

(४) मेरा लड़का **हंस** है।

(५) सच्चा कवि **भ्रमर** होता है।

इन सभी उदाहरणों में गुण-सादृश्य के कारण आरोप हुआ है। बालक सिंह के समान वीर है। मुख सौंदर्य में कमल के समान है। स्त्री गाय जैसी सीधी नहीं, साँपिन जैसी दुष्ट और कुटिल है। लड़का हंस के समान विवेकी है। कवि अपने रस-संग्रह करने के गुण में भ्रमर के समान है। इस प्रकार इन सबमें लक्षणा का निमित्त गुण देख पड़ता है। अतः सब में गौणी लक्षणा हैं। आरोप-विषय और आरोप्यमाण दोनों का **स्पष्ट उल्लेख**[1] होने से लक्षणा सारोपा है।

(४) गौणी साध्यवसना लक्षणा

अद्‌भुत एक अनूपम **बाग**।
जुगल **कमल** पर **गज** क्रीडत है, तापर **सिंह** करत अनुराग॥

---

(१) देखो—काव्यप्रकाश—सारोपाऽन्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा। (२।११)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हरि पर **सरवर** सर पर **गिरिवर** तापर फूले **कंज** पराग।
रुचिर **कपोत** बसे ता ऊपर, ता ऊपर **अमृतफल** लाग॥
फल पर **पुहुप**, पुहुप पर **पल्लव**, तापर **सुक पिक मृगमद काग**।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर एक **मनिधर नाग**॥

× × × × ×
× × × × ×

(सूरदास)

इस एक ही पद में साध्यवसाना के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। राधा के अंग अंग का सौंदर्य-वर्णन कवि ने उपमानों द्वारा ही कर दिया है। उपमानों में उपमेयों का अध्यवसान (तादात्म्य) हो गया है। यही साध्यवसाना लक्षणा रूपकातिशयोक्ति अलंकार के मूल में रहती है। और इस लक्षणा का प्रयोग कवि की उक्तियों में ही अधिक देख पड़ता है। इसी से यहाँ काव्य से उदाहरण लेना ही समीचीन जान पड़ा।

(५) शुद्धा सारोपा लक्षणा

(१) **दवा** मेरा **जीवन** है।
(२) **घृत आयु** है।
(३) **दूध** ही मेरा **बल** है।
(४) अविरत **सुख** भी **दुःख** है।
(५) यह **ग्रंथ रघुवंश** है।
(६) वह **ब्राह्मण** पूरा **बढ़ई** है।

इन सब उदाहरणों में आरोप प्रत्यक्ष देख पड़ रहा है। पर आरोप का निमित्त संबंध-सादृश्य नहीं है। दवा पर जीवन का आरोप हुआ है क्योंकि दोनों में कार्य-कारण संबंध है। इसी प्रकार घृत और दूध पर आयु और बल का आरोप जन्य-जनक संबंध से हुआ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है। अविरत सुख भी दुःख का कारण होता है इससे सुख पर दुःख का आरोप किया गया है। ग्रंथ में रघुवंश का वर्णन है, इसलिये यहाँ भी आरोप का निमित्त सादृश्य नहीं है। ब्राह्मण तात्कर्म्य संबंध से बढ़ई माना गया है, इससे गुण द्वारा यहाँ सादृश्य-संबंध नहीं माना जा सकता। इस प्रकार इन सभी में आरोप का कारण सादृश्य-संबंध न होने से शुद्धा सारोपा लक्षणा मानी जाती है।

(६) शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा

(१) लो तुम्हें **आयु ही** दे रहा हूँ।

(२) **बढ़ई** भी आया था।

(३) इस **दुःख** से कैसे छुटकारा मिले।

(४) **रघुवंश** पढ़ो।

इन वाक्यों में प्रसंगानुसार आयु, बढ़ई, दुःख और रघुवंश से क्रमशः घृत, ब्राह्मण-विशेष, अविरत सुख और ग्रंथ-विशेष का अर्थ निकलता है। अर्थात् इन आरोप्यमाणों में आरोप विषयों का अध्यवसान देख पड़ता है। अतः इन सबमें साध्यवसाना लक्षणा है। अध्यवसान का कारण सादृश्य नहीं है इससे लक्षणा शुद्धा है।

कुछ लोग इन छः विभागों में से प्रत्येक के रूढ़ि और प्रयोजन के अनुसार दो दो भेद और करते हैं; पर मम्मट, जगन्नाथ, अप्पय दीक्षित आदि बड़े आचार्य रूढ़ि लक्षणा के भेद-प्रभेद नहीं करते अर्थात् वे प्रयोजनवती लक्षणा के ही उपर्युक्त छः भेद मानते हैं। उनका ऐसा करना बिलकुल अकारण नहीं है। सच पूछा जाय तो व्यवहार में रूढ़ लक्षणा होती ही नहीं। 'कुशल'[1] और द्विरेफ आदि शब्दों की लोक में इतनी प्रसिद्धि हो गई है कि कभी इन शब्दों में मुख्यार्थ-बाध की कल्पना ही नहीं होती। कुशल कहने

---

(१) देखो—साहित्यदर्पण (II) और काव्यानुशासन (हेमचंद्र-कृत)।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

से चतुर का बोध होता है। यह उसका प्रसिद्ध अर्थ है। कोई भी साधारण मनुष्य इसे लक्ष्यार्थ नहीं मान सकता। केवल शास्त्रज्ञ विद्वान् कुशल से कुश लानेवाले का अर्थ समझता है। अतः उसकी दृष्टि में यह ऐतिहासिक अर्थ मुख्यार्थ है; और आजकल का प्रसिद्ध अर्थ लाक्षणिक अर्थ है। इस प्रकार शास्त्रकार और शास्त्रज्ञ अवश्य इन रूढ़ और प्रसिद्ध शब्दों को अप्रसिद्ध और लाक्षणिक मान सकते हैं पर जन-साधारण नहीं। इसी से आचार्यों ने निरूढ़ लक्षणा को केवल शास्त्रोपयोगी समझकर उसका निर्देश मात्र कर दिया है।

व्यंजना के विचार से भी रूढ़ि में कोई चमत्कार नहीं रहता। केवल प्रयोजनवती लक्षणा में व्यंग्य रहता है; इससे उसी के दो भेद और किए जाते हैं—गूढ़व्यंग्या और अगूढ़व्यंग्या। अगूढ़-व्यंग्या लक्षणा का प्रयोजन सबको स्पष्ट समझ में आ जाता है पर गूढ़व्यंग्या के प्रयोजन को केवल चतुर जन समझ पाते हैं। जैसे वह बालक सिंह है—इस वाक्य में लक्षणा का व्यंग्य प्रयोजन बिलकुल स्पष्ट है। सिंह कहने से बालक के विशेष बल और वीर्य की व्यंजना होती है। अतः सिंह में अगूढ़ा लक्षणा है। उसी अर्थ में यदि कहें कि उस बालक की गर्जना सुनकर सभी प्रतिवादी चुप हो गए तो 'गर्जना' शब्द में गूढ़ा लक्षणा होती है। 'गर्जना' का लाक्षणिक अर्थ—अर्थात् ओजस्वी वक्तृता का अर्थ—सबको समझ में आता है पर साथ ही इस लक्षणा से लड़के का सिंह के समान तेजस्वी और विजयी होना व्यंग्य है; इस व्यंग्य को समझदार ही समझ पाते हैं। क्योंकि विचार करने पर यह समझ में आता है कि बालक पर सिंह का आरोप किया गया है और तब कहीं व्यंजना का परदा हटता है। इसी प्रकार अधिकांश मुहाविरेदार प्रयोगों में गूढ़व्यंग्या (अर्थात् छिपी) लक्षणा होती है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस प्रकार प्रयोजनवती लक्षणा के बारह भेदों में निरूढ़ा का केवल एक प्रकार मिला देने से लक्षणा के **तेरह भेद** हो जाते हैं। बड़े आचार्यों ने इतने ही भेद माने हैं और साहित्य-समीक्षा के लिये इतने भेद पर्याप्त हैं, पर अर्थातिशय की दृष्टि से लक्षणा के अनेकानेक भेद करना भी संगत हो सकता है। एक भाषाशास्त्री की दृष्टि से शब्द[1] में, पदार्थ में, वाक्यार्थ में, लिंग, वचन, कारक आदि सभी में लक्षणा का अध्ययन करना चाहिए। साधारण लोग अवश्य लिंग वचन आदि में लक्षणा की बात सुनकर चौंक सकते हैं पर बिल्ली, हाथी आदि शब्दों का व्यवहार क्यों दोनों लिंगों में होने लगा, क्यों 'वर्षाः' 'सभाः' आदि शब्दों का प्रयोग केवल बहुवचन में होने लगा, इत्यादि प्रश्नों का उत्तर लक्षणा ही देती है। आलंकारिक प्रयोगों की विशेषताओं को लक्षणा ही खोलती है। अतः लक्षणा के विशेष विवेचन का महत्त्व स्पष्ट है।

लक्षणा के कुल तेरह भेद

(व्यंजना)

लक्षणा का क्षेत्र इतना विस्तीर्ण और व्यापक है कि अनेक विद्वान् लक्षणा को ही सब कुछ मान बैठे। आक्षेप, अनुमान, अर्थापत्ति, श्रुतार्थापत्ति आदि सभी को लक्षणा के अंतर्गत समझने लगे। कुछ दार्शनिक ही नहीं, मुकुल भट्ट जैसे आलंकारिक भी भ्रम में पड़ गए। पर विचार करने पर मालूम पड़ता है कि शब्द में एक तीसरी शक्ति भी रहती है। नित्य के अनुभव में देखा जाता है कि किसी किसी शब्द से वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त

---

(१) देखो—

शब्दे पदार्थे वाक्यार्थे संख्यायां कारके तथा।
लिंगे चेयमलंकारांकुरबीजतया स्थिता ॥ (चंद्रालोक ६ । १६)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

एक तीसरा अर्थ निकलता है। सीधे शब्द से (लक्षणा अथवा अभिधा द्वारा) एक ही बात का बोध होता है पर सुननेवाले को उसी से न जाने कितनी दूसरी बातें सूझ जाती हैं। शब्द की यह सुझानेवाली शक्ति अभिधा अथवा लक्षणा नहीं हो सकती। यह एक मानी[1] हुई बात है कि शब्द की शक्ति एक प्रकार का अर्थ-बोध करा चुकने पर क्षीण हो जाती है। उसका एक व्यापार एक ही अर्थ का बोध करा सकता है। अभिधा अपना काम करके चुप हो जाती है। लक्षणा अपना अर्थ सिद्ध करके विरत हो जाती है। अतः

व्यंजना का स्वरूप

दोनों शक्तियों के क्षीण हो जाने पर शब्द जिस शक्ति से किसी दूसरे अर्थ को सूचित करता है उसे व्यंजना कहते हैं। इस व्यंजना शक्ति द्वारा बोध्य अर्थ को व्यंग्यार्थ और ऐसे अर्थ से संपन्न शब्द को व्यंजक कहते हैं।

शब्द की अन्य दो शक्तियाँ शब्द के द्वारा ही अपना काम करती हैं पर व्यंजना शक्ति कभी कभी अर्थ के द्वारा भी अपना

व्यंजना के दो भेद

व्यापार करती है, इसी से व्यंजना **शाब्दी** और **आर्थी**—दो प्रकार की मानी गई है। शाब्दी व्यंजना कभी अभिधामूला होती है, कभी लक्षणामूला; और आर्थी व्यंजना कभी वाच्यार्थसंभवा, कभी लक्ष्यार्थसंभवा और कभी व्यंग्यार्थसंभवा होती है। इस प्रकार शाब्दी व्यंजना दो प्रकार की और आर्थी तीन प्रकार की होती है।

अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

अभिधा द्वारा भी एक शब्द से अनेक अर्थों का बोध होता है। ऐसा क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर अर्थातिशय का शास्त्र

---

(१) 'शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावः'। भट्टलोल्लटप्रभृति कुछ विद्वानों ने इस सिद्धांत का विरोध किया था पर उनका मम्मट ने अपने काव्य-प्रकाश में मुँहतोड़ उत्तर दिया है। देखो—काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

देगा पर इतना हम प्रत्यक्ष व्यवहार में देखते हैं कि एक शब्द के वाच्यार्थ भी अनेक होते हैं। बहुत से व्यक्तिवाचक नाम और अनेक निर्योग धातुएँ तक अनेकार्थक होती हैं फिर यौगिक शब्दों का क्या पूछना है? ऐसी दशा में प्रयुक्त शब्द का इष्ट अर्थ क्या है, यह निश्चित करने के लिये संयोगादि[1] अर्थ-नियामकों का विचार करना पड़ता है। किसी किसी शब्द का **संयोग** अर्थ नियमित कर देता है। हरि शब्द का विष्णु, शिव, इंद्र, सूर्य, बंदर, सिंह आदि अनेक अर्थों में व्यवहार होता है। पर जब 'हरि' के साथ शंख-चक्र का संयोग रहता है तो 'हरि' शब्द का अर्थ विष्णु ही होता है। कभी कभी **विप्रयोग** (संयोग का विपर्यय) भी शब्द के विशेषार्थ का निर्णय कर देता है। वज्र-हीन हरि से इंद्र का ही बोध होता है। वज्रवाले (देव) से ही वज्र का वियोग हो सकता है। **साहचर्य** और **विरोध** कभी कभी वाच्यार्थ निश्चित कर देते हैं। राधा के सहचर 'हरि' से सदा कृष्ण का और मृग के विरोधी 'हरि' से सिंह का बोध होता है। कभी कभी **अर्थ** अर्थात् प्रयोजन का विचार वाच्यार्थ स्पष्ट कर देता है। 'स्थाणु' का अर्थ 'शिव' और 'खंभा' दोनों होता है, पर 'मुक्ति के लिये स्थाणु का भजन करो' में स्थाणु से शिव का ही बोध होता है। मुक्ति का प्रयोजन शिव से ही सिद्ध हो सकता है। कहीं कहीं **प्रकरण** से अर्थ का निर्णय हो जाता है; जैसे सैंधव का अर्थ घोड़ा तथा नमक दोनों होता है, पर भोजन के प्रकरण में प्रयुक्त 'सैंधव' नमक का ही वाचक हो सकता है।

---

(१) देखो—संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥ (वाक्यपदीय)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लिंग[1] अर्थात् गुण-विशेष द्वारा भी किसी किसी शब्द का वाच्यार्थ निरूपित होता है। जैसे 'क्रुद्ध मकरध्वज' से कामदेव का अर्थ निकलता है। मकरध्वज का अर्थ समुद्र भी होता है पर समुद्र किसी युवक अथवा युवती पर क्रुद्ध नहीं हो सकता। इस क्रोध के लिंग से यहाँ अर्थ-निर्णय हो जाता है। दूसरे, शब्द की **सन्निधि** से भी कई शब्दों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। 'कर सों सोहत नाग' में नाग शब्द की समीपता से 'कर' का अर्थ 'हाथी की सूँड़' निश्चित हो जाता है। कभी **सामर्थ्य** ही अर्थ-निर्णायक हो जाती है। 'मधु से मत्त कोकिल' कहने से 'मधु' का अर्थ वसंत निश्चित हो जाता है। 'मधु' के अन्य अर्थ भी होते हैं पर कोकिल को मत्त करने की सामर्थ्य वसंत में ही होती है। **औचित्य** के अनुसार भी शब्द का विशेष अर्थ निश्चित हो जाता है। 'एक' शब्द संख्या और परिमाण दोनों का वाचक होता है पर 'वेद का एक परिचय' में एक का संख्यावाचक अर्थ ठीक नहीं बैठता अतः यहाँ एक का 'अल्प' अर्थ लेना चाहिए। शब्द का अर्थ निर्णय करने में **देश** और **काल** का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो शब्द वैदिक काल में एक अर्थ में रूढ़ था वही आज दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होता है। जो 'बाई' शब्द दक्षिण भारत में कुलीन महिला का बोध कराता है वही उत्तर भारत में प्रायः वारांगना का बोध कराता है। व्यक्ति अर्थात् लिंग-भेद से भी अर्थ-निर्णय कभी कभी हो जाता है। 'बुधि छल बल करि राखिहौं पति तेरी नव बाल'—यहाँ पति का अर्थ लाज है। यदि उसका प्रयोग पुंल्लिग में हुआ होता तो अर्थ दूसरा होता। वैदिक संस्कृत जैसी सस्वर भाषाओं में स्वर भी

---

(१) लिंग का अर्थ यहाँ तो ऐसा धर्म अथवा गुण है जिससे एक द्रव्य की अन्य द्रव्यों से भिन्नता प्रकट हो पर मीमांसा में लिंग का अर्थ अधिक व्यापक है। देखो—श्रुतिः लिंग .....(न्याय-माला०)।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थ-निर्णायक होता है। इन चौदह हेतुओं के अतिरिक्त अभिनय आदि भी शब्द के विशेष अर्थ के ज्ञान में साधक होते हैं।

इस प्रकार किसी न किसी हेतु के वश होकर जब शब्द एक ही अर्थ में नियमित हो जाता है तब भी यदि उस (शब्द) से कोई भिन्न अर्थ निकले तो उस अर्थ का कारण अभिधा-मूला व्यंजना को समझना चाहिए। इस अर्थ का हेतु अभिधा नहीं हो सकती। वह तो पहले से ही एक अर्थ में नियंत्रित हो चुकी है। उदाहरणार्थ—

अभिधामूला व्यंजना की परिभाषा

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

बिहारी के इस दोहे में वृषभानुजा का अर्थ 'वृषभानु की लड़की राधा' और 'हलधर के बीर' का 'हलधारी बलराम का भाई कृष्ण' है। प्रकरण में यही अर्थ ठीक बैठता है अर्थात् प्रकरण ने वाच्यार्थ निश्चित कर दिया है। इस दोहे में इन शब्दों का कोई दूसरा मुख्यार्थ हो ही नहीं सकता। तो भी इन दोनों शब्दों से परिहास की व्यंजना हो रही है। राधा वृषभ की बहिन अर्थात् गाय हैं और कृष्ण हलधर (बैल) के भाई अर्थात् बैल हैं। गाय बैल की अच्छी जोड़ी बनी है! इन दोनों शब्दों में से एक के भी हटा देने से यह (परिहास की) व्यंजना न रह सकेगी। हलधर के स्थान में बलदेव अथवा अन्य कोई समानार्थक शब्द रखने से मुख्य अर्थ तो वही रहेगा पर यह व्यंग्यार्थ जाता रहेगा। इस प्रकार व्यंजना शब्द पर आश्रित होने के कारण शाब्दी है; और अभिधा द्वारा ही व्यंग्यार्थ भी निकल आता है इससे व्यंजना अभिधामूला है। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। इन दोनों शब्दों में श्लेष नहीं है। श्लेष सा मालूम पड़ता है; पर आचार्यों के अनुसार श्लेषालंकार में दोनों अर्थ मुख्य होने चाहिएँ और यहाँ, जैसा हम

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

देख चुके हैं, एक ही अर्थ प्रधान है। दूसरा अर्थ केवल सूचित होता है। ऐसे स्थल में शाब्दी व्यंजना मानी जाती है, श्लेषालंकार नहीं।

लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

प्रयोजनवती लक्षणा में प्रयोजन व्यंग्य रहता है। जिस प्रयोजन अर्थात् व्यंग्यार्थ को सूचित करने के लिये लक्षणा का आश्रय लिया जाता है अर्थात् लाक्षणिक शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह (प्रयोजन अथवा व्यंग्य) जिस शक्ति से प्रतीत होता है उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं[1]। जैसे 'बंबई बिलकुल समुद्र में बसा है'—इस वाक्य में 'समुद्र में' लाक्षणिक पद है। वक्ता उससे जल-पवन की आर्द्रता व्यंजित करना चाहता है। अभिधा यहाँ है ही नहीं। समुद्र में शहर नहीं बस सकता। अतः 'समुद्र का किनारा' अर्थ करना पड़ता है अर्थात् लक्षणा करनी पड़ती है। इसी लक्षणा में आश्रय लेकर व्यंजना प्रयोजन को व्यंजित करती है। अतः यहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना है। प्रयोजनवती सभी लक्षणाओं में ऐसी व्यंजना होती है। प्रायः[2] सभी लाक्षणिक प्रयोगों में कुछ न कुछ व्यंग्य रहता है।

आर्थी व्यंजना

वाच्यसंभवा

जब वाक्य के वाच्यार्थ से किसी अन्य अर्थ की व्यंजना होती है, तब उसे वाच्यसंभवा आर्थी व्यंजना कहते हैं। यदि कोई नित्य

---

(१) देखो—यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।
फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यञ्जनाव्यापरा क्रिया॥
(काव्यप्रकाश २। १४)

(२) क्योंकि रूढ़ प्रयोगों में व्यंग्य नहीं सा रहता है। देखो—'सहितादयोजने' (का० प्र० २। १३)।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सिनेमा जानेवाला लड़का कहता है कि "अब संध्या हो गई; पढ़ना समाप्त करना चाहिए" तो उसके व्यसन से परिचित श्रोता तुरंत उसके व्यंग्यार्थ को समझ जाता है। इस वाच्यार्थ में उसकी सिनेमा जाने की इच्छा छिपी हुई है। इस प्रकार यह वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ का व्यंजक है। और वाच्यार्थ द्वारा घटित होने के कारण व्यंजना वाच्यसंभवा है। संध्या, पढ़ना आदि के स्थान में सायंकाल, अध्ययन आदि शब्द रख दें तो भी व्यंजना बनी रहेगी। वह शब्द पर नहीं, अर्थ पर आश्रित है।

लक्ष्यसंभवा

जब लक्ष्य अर्थ में व्यंजना होती है, वह लक्ष्यसंभवा (आर्थी व्यंजना) कहलाती है। कोई पिता अपने पुत्र के अयोग्य शिक्षक से कहता है कि अब लड़का बहुत अधिक सुधर गया है। विद्या ने उसे विनय भी सिखा दी है। मैं उसके आचरण से बड़ा प्रसन्न हूँ। विपरीत लक्षणा से इसका यह लक्ष्यार्थ निकलता है कि लड़का पहले से अब अधिक बिगड़ गया है। जो कुछ पढ़ा-लिखा है उससे भी उसने अविनय ही सीखी है। मैं उससे बिलकुल अप्रसन्न हूँ। इस लक्ष्यार्थ से श्रोतृ-वैशिष्ट्य द्वारा यह व्यंग्य सूचित होता है कि शिक्षक बड़ा अयोग्य है। यदि कोई दूसरा मनुष्य सुननेवाला होता तो यह व्यंजना न हो सकती। पिता शिक्षक से ही कह रहा है, इससे यह अभिप्राय निकल आता है। यह व्यंग्य अभिप्राय लक्ष्यार्थ के द्वारा सामने आता है, अतः यहाँ लक्ष्यसंभवा आर्थी व्यंजना होती है।

इस प्रसंग में एक बात ध्यान देने की है कि जहाँ लक्ष्यसंभवा आर्थी व्यंजना होती है वहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना भी रहती है। कारण यह है कि जो व्यंग्य लक्षणा का प्रयोजन होता है उसके लिये शाब्दी व्यंजना होती है और जो दूसरा व्यंग्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लक्ष्यार्थ द्वारा प्रतीत होता है उसके लिये आर्थी व्यंजना होती है। पहली व्यंजना प्रयोजन को और दूसरी अन्य अर्थ को प्रकट करती है। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में लड़के के दुराचरण और अविनय का अतिशय लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना द्वारा व्यंजित होता है और शिक्षक की अयोग्यता और सापराधता लक्ष्यसंभवा आर्थी व्यंजना द्वारा सूचित होती है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आर्थी व्यंजना शाब्दी के अंतर्गत नहीं, किंतु उससे भिन्न होती है।

व्यंग्यसंभवा

जब एक व्यंग्यार्थ दूसरे व्यंग्यार्थ को सूचित करता है तब उस अर्थ के व्यापार को व्यंग्यसंभवा आर्थी व्यंजना कहते हैं। दो कैदी आधी रात को निकल भागने का निश्चय कर चुके हैं। उनमें से एक कहता है, "देखो रजनीगंधा की कलियाँ कैसी खिल उठी हैं। उनके सौरभ से पवन की गति भी मंद हो गई है।" इन वाक्यों के वाच्यार्थ से यह व्यंग्य सूचित होता है कि आधी रात हो गई है। चारों ओर निःस्तब्धता छाई हुई है। इस व्यंग्यार्थ से उस श्रोता कैदी के लिये एक और व्यंग्य की प्रतीति होती है। वह यह कि इस वेला में निकल भागना चाहिए। इस प्रकार एक व्यंग्य के द्वारा दूसरे व्यंग्य की उत्पत्ति होने से यह आर्थी व्यंजना व्यंग्यसंभवा कहलाती है।

इन सभी उदाहरणों में एक बात स्पष्ट है कि किसी न किसी प्रकार का वैशिष्ट्य ही आर्थी व्यंजना की प्रतीति का हेतु होता है। पहले उदाहरण में 'संध्या हो गई' इत्यादि में वक्ता का वैशिष्ट्य ही व्यंजना का हेतु है। वक्ता की विशेषता से अपरिचित श्रोता के लिये उस वाक्य में कोई व्यंजना नहीं है। दूसरे उदाहरण में बोधव्य (अर्थात् जिससे कहा जाय उस) की विशेषता के कारण

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ही व्यंग्यार्थ संभव हुआ है। और तीसरे उदाहरण में प्रकरण और बोधव्य (श्रोता) दोनों की विशेषता व्यंजना का हेतु हो गई है। रजनीगंधा के खिलने आदि की बात सुनकर कोई भी सहृदय काल-वैशिष्ट्य से पहली वाच्यसंभवा व्यंजना अवश्य समझ लेगा, अर्थात् निशीथ वेला की प्रतीति उसे हो जायगी। पर इस व्यंग्य से उत्पन्न दूसरे व्यंग्य को प्रकरण और बोधव्य के ज्ञान द्वारा ही कोई समझ सकता है। कैदीवाले प्रकरण को जानना इस व्यंजना के लिये आवश्यक है।

उपर्युक्त इन सभी बातों का विचार कर आचार्यों ने **अार्थी व्यंजना** अर्थ के उस व्यापार को माना है जो वक्ता, बोधव्य (श्रोता), काकु, वाक्य, वाच्य अर्थ, अन्य सन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल आदि के वैशिष्ट्य (अर्थात् विशेषता) के कारण मर्मज्ञ प्रतिभाशाली सहृदय व्यक्ति को दूसरे अर्थ की अर्थात् (अभिधा और लक्षणा द्वारा न जाने हुए) व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराता है[1]।

वक्ता, श्रोता (बोधव्य) और प्रकरण का अर्थ ऊपर स्पष्ट हो चुका है। काकु स्वर-विकार को कहते हैं। स्वर का अर्थ यहाँ वैदिक पद-स्वर नहीं है। स्वर का सामान्य अर्थ 'आवाज' अथवा ध्वनि ही यहाँ अभिप्रेत है। एक ही वाक्य का स्वर बदल बदलकर पढ़ने से अर्थ दूसरा दूसरा हो जाया करता है। मैं दोषी हूँ। साधारण स्वर से कहने पर यह वाक्य साधारण अर्थ देता है; पर थोड़े सुर से 'मैं' पर थोड़ा बल देकर पढ़ने से इसका उलटा अर्थ निकलता है। उसी वाक्य से निरपराध होने की व्यंजना

---

(१) देखो—वक्तृबोधव्यकाकूनां वाक्यवाच्यान्यसन्निधेः।
प्रस्तावदेशकालादेर्वैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषाम्।
योऽर्थस्यान्यार्थधीहेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेव सा॥
(का० प्र० ३। २१-२२)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

टपकती है। यही काकु-सिद्ध व्यंजना कहलाती है। इसी प्रकार वाक्य-वैशिष्ट्य, वाच्यार्थ-वैशिष्ट्य, किसी दूसरे का सामीप्य, प्रस्ताव अर्थात् प्रकरण और देश-काल आदि का वैशिष्ट्य भी आर्थी व्यंजना का हेतु होता है। इन हेतुओं के अनुसार पहले गिनाए हुए तीन भेदों के अनेक भेद हो सकते हैं; जैसे, वक्तृवैशिष्ट्य से प्रयुक्त वाच्यसंभवा को (जिसका उदाहरण 'संध्या हो गई···' में आ चुका है) वाच्य-संभवा-वक्तृ-वैशिष्ट्य-प्रयुक्ता कह सकते हैं। फिर बोधव्य से होनेवाली को वाच्य-संभवा-बोधव्य-वैशिष्ट्य-प्रयुक्ता कहेंगे। इसी प्रकार और और वैशिष्ट्यों से अन्य भेद हो जायँगे, पर प्रधान भेद तीन ही होते हैं; क्योंकि आर्थी व्यंजना का आधार-स्वरूप अर्थ तीन ही प्रकार का होता है।

आर्थी व्यंजना के संबंध में एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए। इसका व्यापार प्रधानतः अर्थनिष्ठ होता है पर शब्द सदा सहकारी कारण रहता है। आर्थी व्यंजना को प्रतीत करानेवाला अर्थ स्वयं शब्द के द्वारा अभिहित, लक्षित अथवा व्यंजित होता है। अतः शब्द का सहकारी[1] कारण होना स्पष्ट है। यह भ्रम कभी न होना चाहिए कि आर्थी व्यंजना शब्द की शक्ति नहीं है। वास्तव में देखा जाय तो शब्द से बोधित होकर अर्थ व्यापार करता है और शब्द भी अर्थ का सहारा लेकर ही (व्यंजना) व्यापार करता है—दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है। निष्कर्ष यह है कि शाब्दी व्यंजना में पहले शब्द में व्यंजन-व्यापार होता है फिर उसके अर्थ में भी वही क्रिया होती है—इस प्रकार दोनों मिलकर काम करते हैं; पर शब्द की प्रधानता होने के कारण व्यंजना

---

(१) शब्दप्रमाणवेद्योऽर्थो व्यनक्त्यर्थान्तरं यतः।
अर्थस्य व्यञ्जकत्वे तच्छब्दस्य सहकारिता॥
(का० प्र०, ३। २३)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शाब्दी कहलाती है। इसी प्रकार जब व्यंजना की क्रिया पहले अर्थ में होती है और पीछे से शब्द में, तो ऐसी क्रिया आर्थी व्यंजना मानी जाती है।

यदि अर्थ के विचार से व्यंजना के भेद किए जायँ तो अनेक हो सकते हैं। कई लोग वस्तु-व्यंजना, अलंकार-व्यंजना और भाव-व्यंजना—ये तीन भेद मानते हैं; पर अर्थ की दृष्टि से ध्वनि के इक्यावन भेद-प्रभेद भी व्यंजना के अंतर्गत आ जायँगे। काव्य के उत्तम, मध्यम आदि होने का विचार भी व्यंजना के भीतर आ सकता है। साहित्य अर्थात् कवि-निबद्ध वाङ्मय में चारों ओर व्यंजना की ही लीला तो दृष्टिगोचर होती है। अतः व्यंजना-व्यापार के भेदों का विवेचन करना ही यहाँ समीचीन समझा गया है। मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने भी व्यंजना के प्रकरण में ध्वनि और रस का प्रतिपादन नहीं किया है। व्यंजना उनके मूल में अवश्य रहती है। ये सब व्यंजना के ही फल तो हैं।

उपसंहार

इस प्रकार संक्षेप में शब्द-शक्ति के व्यावहारिक स्वरूप का दर्शन कर लेने पर हमें दो बातों पर और ध्यान देना चाहिए। वैयाकरणों ने शब्द के पारमार्थिक और दार्शनिक रूप की व्याख्या की है। उन्होंने उसकी सच्ची शक्ति का दर्शन किया है। व्यवहार में वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक[1] शब्द ही सामने आता है पर वास्तविक शक्ति इस अनित्य (भौतिक वायु से उत्पन्न) और प्रयोग में अभिव्यक्त शब्द में नहीं रहती। शक्ति—तीनों में से किसी भी प्रकार की शक्ति—शब्द के अव्यक्त रूप में रहती है। उस अव्यक्त रूप को वैयाकरण स्फोट कहते हैं। उनके अनुसार स्फोट[2] ही शब्द

(१-२)—देखो महाभाष्य...'ध्वनिः शब्दः' और 'स्फोटः शब्दः'।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है। वास्तविक शक्ति स्फोट में ही रहती है। अतः स्फोट और स्फोटनिष्ठा शक्ति का अध्ययन भी शक्ति के सम्यक् परिचय के लिये परमावश्यक है।

दूसरी बात आजकल के अर्थातिशय[1] शास्त्र की दृष्टि है। आजकल भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी शब्द-शक्ति का बड़ा सविस्तर अध्ययन कर रहे हैं। जिस प्रकार भारत की सूत्र-शैली प्रसिद्ध है उसी प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययन में विस्तार की प्रणाली एक सामान्य बात हो गई है। यद्यपि भारतीयों की त्रिविधा शक्ति की विवेचना में सभी बातें आ जाती हैं पर उसी का नवीन अर्थातिशय की दृष्टि से विचार करना भी कम उपादेय नहीं होता। कुछ लोगों के अनुसार तो नए ढंग का शक्ति का अध्ययन एक अनोखी चीज है। क्यों न हो! प्रस्थानभेदाद्दर्शनभेदः[2]। दूसरे मार्ग से जाने-वाले को वही—बिलकुल वही—वस्तुएँ दूसरी देख पड़ती हैं। इसी कारण तो एक ही विश्व को भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न रूप में, अपने अपने ढंग से, देखा और इतने विभिन्न और परस्पर-विरोधी दर्शन-शास्त्रों की रचना की। तब क्यों न हम आधुनिक अर्थातिशय विद्या को शब्द-शक्ति के अध्ययन में उचित और आदरणीय स्थान दें!

इस त्रिविधात्मिका दृष्टि से शब्द-शक्ति का दर्शन कर लेने पर ही शब्द-ब्रह्म का दर्शन हो सकता है। प्रत्येक जिज्ञासु इस दर्शन के लिये लालायित रहता है। यहाँ केवल दिग्दर्शनमात्र करा दिया गया है।

---

(१) देखो—Essai de Semantique by H. Breal और Intellectual Laws by H. K. Sarkar, (Ashutosh Volume III)

(२) देखो—मधुसूदन सरस्वती-कृत प्रस्थानभेद।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(१६) तसव्वुफ अथवा सूफीमत का क्रमिक विकास

[लेखक—श्री चंद्रबली पांडेय, एम० ए०, काशी]

(१)

सूफीमत[1] के उद्भव के संबंध में विद्वानों में गहरा मतभेद है। यह मतभेद सूफीमत के दार्शनिक पक्ष की गहरी छान-बीन का फल नहीं है। मत तो किसी वासना, भावना या धारणा की संरक्षा अथवा उसके उच्छेद के प्रयत्न का परिणाम होता है। अतः जो लोग उसके मर्म से परिचित होना चाहें उन्हें सर्वप्रथम उसके इतिहास पर ध्यान देना चाहिए। इतिहास के आधार पर अध्ययन करने से किसी मत का सच्चा स्वरूप अपने शुद्ध और निखरे रूप

---

(१) सूफी शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में भी अनेक मत हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि मदीना में मसजिद के सामने एक सुफ्फा (चबूतरा) था। उसी पर जो फकीर बैठते थे वे सूफी कहलाए। दूसरे लोगों का कहना है कि सूफी शब्द के मूल में सफ्फ (पंक्ति) है। विर्णय के दिन जो लोग अपने सदाचार एवं व्यवहार के कारण औरों से अलग एक पंक्ति में खड़े किए जायँगे वास्तव में उन्हीं को सूफी कहते हैं। तीसरे दल का कथन है कि सूफी वस्तुतः स्वच्छ और पवित्र होते हैं। सफा होने के कारण उनको सूफी कहते हैं। चौथे दल के विचार में सूफी शब्द सोफिया (ग्रीक) का रूपांतर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफी कहा जाता है। पर अधिकतर विद्वानों का मत है कि सूफी शब्द वास्तव में सूफ (ऊन) से बना है। सूफधारी ही वास्तव में सूफी के नाम से ख्यात हुए। निकलसन, ब्राउन, मारगोलियथ प्रभृति विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफी शब्द सूफ से बना है। अनेक मुसलिम आलिमों ने भी इसे स्वीकार किया है। अस्तु, हमको यही व्युत्पत्ति मान्य है। बपतिस्मा देनेवाला जान या योहन्ना भी सूफधारी था, पर अब सूफी का प्रयोग मुसलिम संत या फकीर के लिये ही नियत सा समझा जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में प्रकट होता है और उसके उद्भव तथा विकास का ठीक ठीक पता भी चल जाता है। परंतु पश्चिम के पंडितों ने सूफीमत के विवेचन में, उसके मूल स्रोत की उपेक्षा कर, या तो उसके इसलामी स्वरूप अथवा केवल उसके आर्य-संस्कार पर ही अधिक ध्यान दिया है। जिन मनीषियों ने निष्पक्ष भाव से सूफीमत के उद्भव के विषय में जिज्ञासा की है उनके निष्कर्ष भी प्रायः भ्रमात्मक ही रहे हैं। संस्कार लाख प्रयत्न करने पर भी अपनी झलक दिखा ही जाते हैं। अतः किसी मत के विवेचन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व होता है। उन्हीं के परिचय के आधार पर किसी मत के सच्चे स्वरूप का आभास दिया जा सकता है। सूफीमत इसलाम का एक प्रधान अंग माना जाता है। यद्यपि अनेक सूफियों ने अपने को मुहम्मदी मत से अलग रखने की पूरी चेष्टा की तथापि उनके व्याख्यान में मुहम्मद साहब का पूरा प्रभाव दिखाई देता है। स्वयं मुहम्मद साहब अपने मत—इसलाम—को अति प्राचीन सिद्ध करते थे। उनका कहना था कि मूसा और मसीह के उपासकों ने इस प्राचीन—मत—इसलाम को भ्रष्ट कर दिया था; अतः अल्लाह ने उसके सच्चे स्वरूप के प्रकाशन के लिये मुहम्मद को अपना रसूल चुना। सूफियों में जिनका ध्यान मुहम्मद साहब की इस प्रवृत्ति की ओर गया उनको आदम[1] ही सर्वप्रथम सूफी दिखाई पड़े। किंतु जो सूफी मुहम्मद साहब को इसलाम का प्रवर्त्तक मानते हैं उनके विचार में अंतिम रसूल ही तसव्वुफ के भी विधाता थे। सूफियों की व्यापक विचार-धारा के लिये कुरान में पर्याप्त सामग्री न थी। निदान उनमें कुछ ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति निकले जो हदीस के आधार पर सिद्ध करने लगे कि गुह्य विद्या का प्रचार स्वयं मुहम्मद साहब ने नहीं किया। उन्होंने कृपा कर उसका भार अली या

(१) Studies in Tasawwuf p. 118

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किसी अन्य साथी को, उसकी गुह्यता के कारण, सौंप दिया। मुसलमानों में जो कट्टर थे उनको सूफियों के विचारों में कुछ गैर-इसलामी भावों का समावेश देख पड़ा; अतः उन्होंने तसव्वुफ को इसलाम से कुछ भिन्न समझा। इस प्रकार स्वतः इसलाम में तसव्वुफ के संबंध में मतभेद रहा। कभी उसके विषय में मुसलिम एकमत न हो सके।

मुसलमानों के पतन के बाद मसीहियों का सितारा चमका। सूफियों और मसीही संतों में बहुत कुछ साम्य था हो। मसीहियों ने उचित समझा कि सूफियों को पूरा नहीं तो कम से कम आधा तो अवश्य ही मसीही सिद्ध किया जाय। निदान, उन्होंने कहना शुरू किया कि आरंभ के सूफी जान या मसीह के शिष्य थे। पादरियों के लिये तो इतना कह देना काफी था। पर मसीही मनीषियों को इतने से संतोष न हो सका। उन्होंने देखा कि जैसे कुरान की सहायता से तसव्वुफ इसलाम का प्रसाद नहीं सिद्ध हो सकता वैसे ही इंजील के आधार पर भी उसको मसीही मत का प्रसाद नहीं कहा जा सकता। तब तसव्वुफ आया कहाँ से? आर्य-उद्गम[1] तो उनको रुचिकर न था। फिर भी, उन्हें उन विद्वानों को शांत करना था जो तसव्वुफ को आर्य-संस्कार का अभ्युत्थान अथवा वेदांत का मधुर गान समझते थे। अस्तु, उन्होंने नास्तिक और मनी-मत के साथ ही साथ नव-प्लेटो-मत की शरण ली। नव-प्लेटो-मत की सहायता से उन प्रमाणों का निराकरण किया गया जिनके कारण तसव्वुफ भारत का प्रसाद समझा जाता था। जब उससे भी पूरा न पड़ा तब, इतिहास के आधार पर, बाद के सूफियों पर उन्होंने भारत का प्रभाव मान लिया और

---

(१) A Literary History of Persia p. 301

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तसव्वुफ को अंशतः प्राचीन आर्य-संस्कृति का अभ्युत्थान भी स्वीकार किया।

मुसलिम साहित्य के मर्मज्ञ पंडितों के सामने सूफीमत के उद्भव का प्रश्न बराबर बना रहा। अंत में उनको उचित जान पड़ा कि इसलाम की भाँति ही उसको भी कुरान का मत मान लिया जाय। निदान निकल्सन[1] तथा ब्राउन सदृश मर्मज्ञों ने सूफीमत का मूल-स्रोत कुरान में माना। निस्संदेह कुरान में कतिपय स्थल सूफियों के सर्वथा अनुकूल हैं और उन्हीं के आधार पर सदा से सूफी अपने मत को इसलाम के अंतर्गत सिद्ध करते आ रहे हैं। पर विचारणीय प्रश्न यहाँ पर केवल यह है कि सूफियों का समूचा अर्थ कहाँ तक वास्तव में अक्षरशः ठीक है। सूफियों ने शब्दों को तोड़-मरोड़कर इस्लाम और तसव्वुफ को एक करने की जो घोर चेष्टा की उसका प्रधान कारण है कि फकीर (धर्मशास्त्री) सदैव फकीरों के प्रतिकूल रहे हैं। यदि हम सूफियों की इस बात को मान भी लें कि उनका मत कुरान-प्रतिपादित है तो भी सूफीमत का उद्भव कुरान से नहीं सिद्ध हो पाता। हम देख चुके हैं कि कुरान अथवा मुहम्मद साहब का मत प्राचीन परंपरा का एक विशेष रूप है। यही कारण है कि इसलाम में प्राचीन नबियों, विशेषतः मूसा, ईसा और दाऊद की पूरी प्रतिष्ठा है, और मुसलमान तौरेत, इंजील और जबूर को आसमानी किताब मानते हैं। कुछ सूफियों का[2] कहना है कि सूफीमत का, आदम में बीज-वपन, नोह में अंकुर, इब्राहीम में कली, मूसा में विकास, मसीह में परिपाक एवं मुहम्मद में मधु का फलागम हुआ। एक और प्रवाद[3] है कि सूफियों

---

(१) A Literary History of the Arabs p. 23.

(२) The Awariful Marif p. 7

(३) तसव्वुफ इसलाम, पृ० ११।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के अष्टगुणों का आविर्भाव क्रमशः इब्राहीम, इसहाक, अयूब, जकरिया, यही, मूसा, ईसा एवं मुहम्मद साहब में हुआ। कहने का सारांश यह कि सूफीमत के आदि-स्रोत का पता लगाने के लिये इसलाम से परे, मुहम्मद साहब से आगे बढ़कर शामी जातियों की उस भावभूमि पर विचार करना चाहिए जिसके गर्भ में सूफीमत का मूल आज भी छिपा है।

सूफीमत के मूल-स्रोत का पता लगाने के लिये यह परम आवश्यक है कि हम उसके सामान्य लक्षणों से भली भाँति अभिज्ञ हों। इसमें तो किसी को भी संदेह नहीं हो सकता कि जिस वासना, भावना या धारणा के आधार पर सूफीमत का महल खड़ा किया गया उसके मूल में प्रेम का निवास है। प्रेम पर सूफियों का इतना व्यापक और गहरा अधिकार है कि लोग प्रेम को सूफीमत का पर्याय समझते हैं। सूफियों के पारमार्थिक प्रेम के संकेत पर पश्चिम में प्रेम का इतना गुणगान किया गया कि इसका लोक से कुछ संबंध ही न रह गया। प्रेम के सुनहरे पंख पर बैठकर लोग न जाने कहाँ कहाँ उड़ने लगे। बात यह थी कि मसीह का मूलमंत्र विराग था। सूफियों के प्रेम-पक्ष की प्रबलता अथवा उनके राग की वर्षा से जब यूरोप आप्लावित हो गया तब उसे मसीही मत में भी विरति के साथ रति[1] का समावेश करना पड़ा। फलतः प्रेम में पाषंड का प्रचार होने लगा। आजकल प्रेम का लक्ष्य प्रेम ही जो सिद्ध किया जाता है, जगह जगह स्वर्गीय प्रेम के जो गीत गाए जाते हैं, प्रेम को दुनिया से जो अलग खड़ा किया जाता है, उसका प्रधान कारण उक्त धर्म-संकट ही है। मसीह की दुलहिनों अथवा भक्त संतों ने प्रेम को जो अलौकिक रूप दिया उसके मूल में वही

(१) A Short History of Women p. 250
The Legacy of The Middle Ages p. 407

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रति-भाव है जिसको लेकर सूफी साधना के क्षेत्र में उतरे थे और शामी सुधारकों के कट्टर विरोध के कारण उसको कुछ दिव्य बनाकर जनता के सामने रखते थे। प्रेम के संबंध में यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि वह एक मानसी प्रक्रिया है जिसका ध्येय आनंद है। अंतरायों के द्वारा रति में जितने विघ्न पड़ते हैं उनके कारण काम-वासना और भी परिमार्जित हो प्रेम का रूप धारण करती है। इसी परिमार्जन के प्रसाद से रति को प्रेम की संज्ञा प्राप्त होती है। देव-परक होने पर यही रति भक्ति का रूप धारण करती है। प्रवृत्ति-मार्गी इसलाम में विवाह आधा स्वर्ग समझा जाता था, अतः प्रेम-मार्गी सूफियों को रति के संबंध में इतना ढोंग नहीं रचना पड़ा जितना निवृत्ति-मार्गी मसीही संतों और उन्हीं की देखादेखी आधुनिक प्रेमपंथी कवियों को प्रतिदिन करना पड़ता है।

सूफियों ने जिस सहज रति पर अपना मत खड़ा किया उसका विरोध बहुत दिनों से शामी जातियों में हो रहा था। आदम के स्वर्ग से निकाले जाने की कथा के मूल में रति का निषेध स्पष्ट झलकता है। हौवा के अनुरोध से आदम का पतन हुआ। स्त्री-पुरुष का सहज संबंध गर्हित समझा गया। फिर क्या था, शामी जातियों में रति की निंदा आरंभ हुई और आगे चलकर वह मसीही मत में पाखंड में परिणत हो गई। मूसा अपने पूर्वजों की भूमि पर अधिकार जमाना चाहते थे। मुहम्मद साहब को भी अरब या बनी-इसमाईल का कई प्रकार से उत्थान करना था। संन्यास से उन्हें चिढ़ और संयत संभोग से प्रेम था। निदान मूसा और मुहम्मद ने प्रवृत्ति-मार्ग पर जोर दिया और संयत संभोग का विधान किया। पर मसीह और उनके प्रधान शिष्य पाल ने विरति का पल्ला पकड़ा। उनके प्रभाव से लोग लौकिक रति से विमुख हो गए। उधर प्लेटो ने गुह्य टोलियों की सहज रति को परम रति का चोला

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दे अलौकिक प्रेम का प्रतिपादन किया था। इधर सूफियों के प्रेम-प्रचार से रति को प्रोत्साहन मिला। फलतः यूरोप में मसीही संतों का उदय हुआ जो कुमारी मरियम या मसीह के प्रेम में मरने लगे। संयोग के लिये तड़प उठे। निदान, मसीह के निवृत्ति-प्रधान मार्ग में आध्यात्मिक प्रणय का स्वागत हुआ। लौकिक रति अलौकिक प्रणय में परिणत हुई।

गत विवेचन से स्पष्ट अवगत होता है कि काम-वासना या रति-भावना को ही विरोध एवं अंतरायों के कारण प्रेम का रूप मिलता है और उन्हीं के कारण धीरे धीरे भीतर ही भीतर परिमार्जित होने से सामान्य रति को परम प्रेम की पदवी मिलती है। सूफी आज भी इश्क मजाजी को इश्क हकीकी का जीना समझते हैं और किसी 'बुत' से दिल लगाने में नहीं हिचकते। उनकी इस बुत-परस्ती का मकसद इश्क नहीं बका है। बका या परमानंद के लिये ही सूफी किसी प्राणी से प्रेम कर परम प्रियतम के विरह का अनुभव करते हैं।

विचारणीय प्रश्न यहाँ पर यह उठता है कि सामान्य रति को परम रति की पदवी क्यों मिली? सूफी किस प्रकार इश्क हकीकी को महत्त्व दे उसके रहस्योद्घाटन में लगे। शामी जातियों में रति का विरोध क्यों छिड़ा और लोग भीतर भीतर उसके स्वागत में मग्न क्यों रहे? उनको अपने गुह्य-प्रयास में कहाँ तक सफलता मिली और अंत में साधन-भाव को व्यापक रूप किस तरह मिल गया?

इसमें तो संदेह नहीं कि परम प्रेम के लिये आलंबन का परम होना अनिवार्य है। प्राणी परम के लिये लालायित तभी होता है जब सामान्य से उसे सुख-संतोष नहीं होता। सुख-संतोष के अभाव का प्रधान कारण भविष्य का भय है। प्राणी यदि सुखी रहे और मरण के भय से बच जाय तो उसे किसी परमेश्वर की भी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आवश्यकता न पड़े, किसी अन्य देवी-देवता की तो बात ही क्या ? आत्म-रक्षा के लिये मनुष्य ने न जाने किसकी किसकी उपासना की, पर उसे सुख-संतोष कहीं नहीं मिला। अंत में शिथिल हो उसने किसी परमेश्वर की शरण ली और उसके प्रसाद एवं संयोग के लिये तड़पना आरंभ किया। उसने दिव्य दृष्टि से देख लिया कि वास्तव में उसके अतिरिक्त इस प्रपंच में और कुछ भी नहीं है। वही सब कुछ है और सब कुछ उसी का रूप है। अद्वैत की इस भावना से वह आगे न बढ़ सका। उसके परमेश्वर भी उसी में लीन हो गए और वह ब्रह्म बन गया। अमृत और आनंद हो गया।

अमृत एवं आनंद की कामना से मनुष्य अन्य प्राणियों से आगे बढ़ा। उसने देखा कि रति, प्रजाति और आनंद का विधान स्त्री-पुरुष के सहज-संबंध में निहित है। आरंभ में शायद उसको इस बात का पता न था कि जनन सृष्टि की एक सामान्य क्रिया है। अपनी शक्ति की कमी का अनुभव कर उसकी पूर्त्ति के लिये मनुष्य ने किसी अलौकिक शक्ति का पता लगा लिया था। उसने मान लिया था कि संतान का उदय किसी देवता का प्रसाद है। संतानों के मंगल के लिये उसने उचित समझा कि सर्वप्रथम संतान को उस देवता को चढ़ा दे जिसकी कृपा से उसे सुख और संतोष मिलता है और जिसके कोप से सर्वनाश हो जाता है।

मनुष्य ने देखा कि स्त्री-पुरुष के सहज संबंध में जो सुख मिलता है उसकी कामना उसके देवता को भी अवश्य होगी। यदि उसके देवता को उसकी जरूरत न होती तो वह उसके सुख में दुःख उपस्थित कर किसी प्राणी को उसके बीच से उठा क्यों ले जाता और निधन के अनंतर भी स्वप्न में उन प्राणियों का दर्शन उसे क्यों होता। अतः मनुष्य ने उचित समझा कि प्रथम संतान[1] को अपने

(१) प्रथम प्रसव को किसी देवता पर चढ़ाने की प्रथा अजीब नहीं। भारत

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

देवता पर चढ़ा दे और उसके आनंद के लिये उसका विवाह भी उसी संतान से कर दे।

इतना तो स्पष्ट ही है कि विवाह से रति की बाढ़ सीमित हो जाती है। प्रणय का अर्थ प्रेम नहीं, रति की मर्यादा को निश्चित करना है। प्रणय की प्रतिष्ठा हो जाने पर रति का क्षेत्र निर्धारित हो जाता है। रति के क्षेत्र के निर्धारित हो जाने से प्रेम का परिमार्जन आरंभ होता है। परिमार्जन से प्रेम को परम प्रेम की पदवी प्राप्त होती है। यदि यह ठीक है तो समर्पित संतान की कामवासना के परिमार्जन में ही सूफियों का परम प्रेम छिपा है।

उपनिषदों[1] में स्पष्ट कहा गया है कि प्रजाति और आनंद का एकायन उपस्थ है। परम पुरुष ने रमण[2] की कामना से द्विधा फिर बहुधा रूप धारण किया। रमण के लिये ही रमणी का सृजन किया। ऋषियों ने देखा कि उपस्थ में प्रजाति और रति का विधान तो है पर उसमें अमृत और शाश्वत आनंद कहाँ है? संतान भी मर्त्य होती है और आनंद भी क्षणिक होता है। अस्तु, सहजानंद में तो शाश्वत आनंद नहीं मिल सकता। शाश्वत आनंद तो तभी

में भी इस प्रथा का पता चलता है। भवानी को संतान का चढ़ाना यद्यपि गाली सा हो गया है तथापि प्रथम फल को लोग स्वयं नहीं खाते, किसी संत फकीर को दे देते हैं। दक्षिण में देवदासियाँ अभी मिलती हैं और बहुत से लोग आज भी दिखाई पड़ते हैं जिनको उनके माता-पिता ने किसी साधु को दे दिया और फिर बड़ा होने पर उससे मोल ले लिया या, साधु हो जाने दिया। प्रणय की भी कुछ यही दशा है। कूप एवं वापी तक का विवाह करा देते हैं। शामी जातियों में विशेषता यह थी कि समर्पित संतान परस्पर देव-रूप में संभोग करना साधु समझती थीं, उसको प्रतीक के रूप में ग्रहण नहीं करती थीं।

(१) बृ० आ० द्वि० अ० च० ब्रा० ११, बृ० आ० च० अ० पं० ब्रा० १४, तै० उ० भृ० व० द्व० अ० ३, कौ० ब्रा० प्र० अ० ७।

(२) बृ० आ० प्र० अ० च० ब्रा० ३।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उपलब्ध हो सकता है जब सहजानंद के उपासक भी सहज रति का आलंबन किसी शाश्वत सत्ता को बना लें। भारत में परमात्मा के साकार स्वरूप को खड़ा कर जिस माधुर्य-भाव का प्रचार किया गया उसी का प्रसार शामी जातियों में निराकार का आलंबन ले मादन-भाव के रूप में हुआ।

शामी जातियों में बाल, कदेश, ईस्टर प्रभृति जो देवी-देवता थे उनके मंदिरों में समर्पित[1] संतानों का जमघट था। उक्त मंदिरों में जो अतिथि आते थे उनके सत्कार का भार उन्हीं समर्पित संतानों पर था। अतिथि-सत्कार की उनमें इतनी प्रतिष्ठा थी कि किसी प्रकार का रति-दान पुण्य ही समझा जाता था। प्रणय की प्रतिष्ठा और सतीत्व की मर्यादा निर्धारित हो जाने से सत्त्व-प्रधान संतानों ने उक्त दान से अपने को अलग रखना उचित समझा। अपने प्रियतम के संयोग के लिये वे सदैव तड़पती रहीं। किसी अन्य अतिथि को रति-दान दे उसके सुख से सुखी नहीं हुईं। सूफियों के व्यापक विरह का उदय उन्हीं में हुआ।

यद्यपि संसार के सभी देशों में देवदासियों का विधान था; पर वास्तव में सूफियों का परम प्रेम उसी प्रेम का विकसित और परिमार्जित रूप है जिसका आभास हमें अभी अभी शामी जातियों की समर्पित संतानों में मिला है। इंज[2] महोदय एवं कतिपय अन्य मनीषियों ने, ग्रीस की गुह्य टोलियों में मादन-भाव का प्रसार और प्लेटो के अलौकिक प्रेम के प्रतिपादन को देखकर, यह उचित समझा कि ग्रीस ही को मादन-भाव के प्रवर्त्तन का सारा श्रेय दिया जाय। परंतु, जैसा कि हम देख चुके हैं, उक्त गुह्य मंडलियों का संबंध किसी देश-विशेष से नहीं, प्रत्युत उस सत्त्व से है जिसकी

---

(१) The Religion of the Semites p. 515

(२) Christian Mysticism p. 369,349-55

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रेरणा से सद्भावना का उदय और संवेदना का प्रसार होता है और मनुष्य-मात्र का जिस पर समान अधिकार है। अस्तु, सूफीमत के उद्भव के संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके मादन-भाव का उदय शामी जातियों के बीच में हुआ। अपनी पुरानी भावना तथा धारणा की रक्षा के लिये सारग्राही सूफियों ने अन्य जातियों के दर्शन तथा अध्यात्म से सहायता ले धीरे धीरे एक नवीन मत का सृजन किया। सूफीमत के उद्भव के संबंध में जो मतभेद चल पड़े हैं उनके मूल में इस तथ्य की अवहेलना ही काम करती है कि किसी भी मत के समीक्षण में सर्व-प्रथम इसकी भावना, स्वाभाविक वासना और संस्कारों पर ध्यान देना चाहिए। क्योंकि उन्हीं के विशेष विशेष रूपों की रक्षा के लिये अन्यत्र से सामग्री ली जाती है और उसकी सहायता से औरों से कुछ पृथक् किसी विशेष दर्शन का निर्माण किया जाता है। तसव्वुफ, नव-प्लेटो-मत और वेदांत में चिंतन की एकता होने पर भी उनके प्रसार में बड़ी विभिन्नता स्पष्ट झलकती है जो उनके प्रचारकों में देश-काल की भिन्नता के कारण आ जाती है। निदान, सूफीमत के उद्भव के लिये हमें शामी जातियों की आदिम प्रवृत्तियों को ढूँढ़ना है। उन्हीं में उसके आदि-स्रोत का पता लगाना है, अन्यत्र कदापि नहीं।

हम पहले ही कह चुके है कि बाल, कदेश, ईस्टर प्रभृति देवी-देवताओं के वियोगी शामी जातियों में विरह जगा रहे थे। पर वास्तव में इनमें अधिकांश कामुक थे जो मंदिरों के अखाड़ों में अपनी काम-कला दिखाते तथा नर-नारियों को भ्रष्ट करते थे। देव-दास तथा देवदासियाँ कामुकों के शिकार हो गए थे। विरले ही व्यक्ति पातिव्रत के पालन में सफल हो रहे थे। वस्तुतः मंदिर व्यभिचार के अड्डे बन गए थे। समाज का बल-वीर्य प्रतिदिन नष्ट

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

होता जा रहा था। अतएव यह्वा[1] के कट्टर[2] उपासकों ने मंदिरों के 'पवित्र व्यभिचार' का घोर विरोध किया। यह्वा एक रुद्र-सेनानी था। उसने नबियों से स्पष्ट कह दिया कि यदि बनी-इसराईल उसकी छत्रच्छाया में अन्य देवी-देवताओं को नष्ट-भ्रष्ट कर एकदम नहीं आ जाते तो उनका विनाश निश्चित है। फिर क्या था, देखते ही देखते यह्वा का आतंक छा गया और अन्य देवी-देवताओं के मंदिर नष्ट कर दिए गए। उनके प्रणयी भक्त या तो यह्वा के संघ में भर्ती हो गए या प्रच्छन्न रूप से रति-व्यापार करते रहे। कर्मशील नबियों के घोर कांडों का प्रभाव सत्त्वशील प्रेमियों पर अच्छा ही पड़ा। देवदासियाँ परदे में बाहर जाने लगीं और काम-वासना का भाव मंद पड़ा। प्रेमियों के प्रत्यक्ष प्रियतम ज्यों ज्यों परोक्ष होने लगे त्यों त्यों उनका विरह बढ़ता और प्रेम खरा होता गया और अंत में उसने इस दबाव के कारण परम प्रेम का रूप धारण कर लिया। उपस्थ में जो संभोग की प्रवृत्ति थी वह इस उपासना में भी बनी रही और सूफी वस्ल के लिये सदैव तरसते रहे।

सूफियों के प्रेम के प्रसंग में जो कुछ निवेदन किया गया है उसके पुष्टीकरण में मीरा और आदाल के प्रेम भी प्रमाण हैं। मीरा

---

(१) यह्वा के संबंध में लोकमान्य तिलकजी का मत है कि वह वैदिक 'यह्व' का रूपांतर है। यह्वा शब्द के लिखने की कोई परिपाटी निश्चित नहीं हो सकी है। इतना तो स्पष्ट है कि यह्वा एक विदेशी देवता था और उसके लिखने का प्राचीन रूप अधिकतर यह्वा के समान था। अतएव हमने इसी रूप का प्रयोग किया है। यह्वा के इतिहास पर विचार करने से अनेक तथ्यों का पता चलता है।

(२) Jeromiah XXVI.7-16
I Kings XIV. 24, XV. 22
Amos II. 7
Hosea IV. 14

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बचपन में अपनी माँ से सुन चुकी थी कि गिरधर गोपाल की मूर्त्ति से उसका प्रणय होगा। फलतः उसे गिरधर गोपाल के प्रेम में 'लोक-लाज' खोनी पड़ी और संतमत में आ जाने के कारण कुछ अधिक उन्मत्त होना पड़ा। आंदाल[1] संभवतः देवदासी थी। वह माधव-मूर्त्ति पर आसक्त थी और स्वयं कृष्ण से प्रणय चाहती थी। कृष्ण की मूर्त्ति में भगवान् का व्यापक अमूर्त्त रूप भी विराजमान था। वास्तव में वही उसका आलंबन था और कहा जाता है कि उसी में वह समा गई। उसके प्रणय को कृष्ण ने स्वीकार किया। मसीह की कुमारी दुलहिनों के प्रेम में भी यही बात है। यही कारण है कि सूफी साफ साफ कह देते हैं कि इश्कमजाजी इश्कहकीकी का जीना है और उसी के आधार से इंसान खुदी का गुमान मिटा खुदा बन जाता है। सूफियों का प्रेम आज भी मूर्त्त से अमूर्त्त की ओर जाता है; वे योंही अमूर्त्त की तान नहीं छोड़ते। हाँ, इतना अवश्य होता है कि सूफी अल्लाह को अमूर्त्त ही रहने देते हैं। वास्तव में इस अमूर्त्त का कारण धर्म-संकट ही है; नहीं तो इसका भी आदि-स्वरूप मूर्त्त ही था। कुरान तक इसके मूर्त्त स्वरूप का कायल है, गो किसी अन्य को इसका सानी नहीं मानता। निदान हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वास्तव में सूफियों के प्रेम का उदय उक्त देवदास एवं देवदासियों के बीच में हुआ और कर्मकांडी नबियों के घोर विरोध के कारण उसको परम प्रेम की पदवी मिली।

नबियों के घोर विरोध का तात्पर्य यह नहीं है कि किसी नबी में मादनभाव के प्रति अनुराग नहीं रह गया। बायबिल में न जाने कितने स्थल ऐसे हैं जिनमें मादनभाव की पूरी प्रतिष्ठा है। मादनभाव के संबंध में अधिक न कह हमें केवल इतना कह देना है कि इलहाम के विधाता वे नबी ही थे जो शामियों में नबी-

(१) Studies in Tamil Literature p. 113

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संतान[1] के नाम से ख्यात थे और विशेष विशेष अवसरों पर देवता के उतर आने के कारण अभुआते और खेलते थे। उनका दावा था कि देवता उनके सिर पर आते थे। वे भविष्य के मंगल के लिये भी कभी कभी कुछ निर्देश कर देते थे। कभी कभी तो उनको इष्टदेव का प्रत्यक्ष दर्शन मिल जाता था और उसकी आज्ञा उन्हें स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। जब कभी किसी देव-स्थान या विशेष उत्सव में उन पर देवता आता था तब जो कुछ उनके मुँह से निकलता था वह उस देवता का आदेश समझा जाता था। उनकी भावभंगियाँ देवता की भावभंगियाँ होती थीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इलहाम ही उनको सामान्य जनता से भिन्न रखता था, और उनको देवता की कृपा का पात्र समझने की प्रेरणा करता था। जिन कर्मकांडी[2] नबियों ने मादनभाव का अनुमोदन नहीं किया, 'पवित्र व्यभिचार' तथा अन्य देवी-देवताओं का विध्वंस किया और सेनानी यह्वा की छत्रच्छाया में उसकी एकाकी सत्ता की मुनादी की, उनकी भी इलहाम पर पूरी आस्था रही। इलहाम के आधार पर ही उनका मत खड़ा रहा। सूफियों ने इलहाम को कभी नहीं छोड़ा। उनके मत में, इलहाम पर सब का अधिकार है। रसूलों के लिये सूफीमत में 'वही' का विधान है और जनसामान्य के लिये इलहाम का।

---

(१) A History of Hebrew Civilization p. 361
Israel p. 444-6
The Religion of the Hebrews p. 116,171
Asianic Element in G. Civilization p. 192

(२) I Samuel X. 11,12
I Kings XIX. 18-19, XVIII, 42
II Kings II. 15

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इलहाम के संपादन के लिये कुछ साधन भी अवश्य होते हैं। सच बात तो यह है कि कुछ मादक द्रव्यों के सेवन से मनुष्य की भावनाओं में जो विलक्षण सुखद परिवर्त्तन आ जाते हैं, प्राय: उसी को आरंभ-काल में लोग देवता का प्रसाद समझते थे। उत्तेजक द्रव्यों के सेवन का प्रधान कारण आनंद की वह उमंग ही है जिसमें प्राणी संसार के झंझटों से मुक्त हो, कुछ काल के लिये, आनंद-घन और सम्राट् बन जाता है। मादक द्रव्यों का प्रयोग साधु-संत व्यर्थ ही नहीं करते; उनके सेवन से उनके फक्कड़पन में पूरी सहायता मिलती है। जिन नबियों के संबध में हम विचार कर रहे हैं उनकी भी गुह्य मंडली की दृष्टि में[1] "पृथिव्यां यानि कर्माणि जिह्वोपस्थनिमित्तत:। जिह्वोपस्थपरित्यागी कर्मणा किं करिष्यति" अक्षरश: सत्य था। उपस्थ में जिस रति और आनंद का विधान है उसका निदर्शन हम कर चुके हैं। जिह्वा के संबंध में यहाँ इतना जान लेना पर्याप्त है कि उक्त मंडली सुरापान खूब करती थी। जब सुरा का रंग जमता था तब लोग नाना प्रकार की उछल-कूद, लपक-झपक और बक-झक में मग्न हो जाते थे; और नाच-गान में इतनी तत्परता दिखाते थे कि उग्र उपद्रवों के कारण उनको मूर्च्छा आ जाती थी। फिर क्या था, उनके सिर पर देवता आ जाता था और वे इलहाम की घोषणा करने लगते थे। नाच-गान की प्रथा बहुत पुरानी है। जीवमात्र[2] में उसकी प्रवृत्ति देखी जाती है। सूफियों के 'समा' और तज्जनित 'हाल' का प्रचार नबियों की उक्त

(१) कुलार्णव तन्त्रम्, ८० उ० १३३।

(२) At all times amongst all races, at all levels of culture, moments such as these have given rise to howling, dancing, jumping, rallying, quaking shaking, and orgastic manifestation of all sorts (Carl Kabu, Science and Religious Life p. 140

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

गुह्य-मंडली में भी अच्छी तरह था। भावावेश के परिणाम कभी कभी अनर्थकारी भी होते थे। उक्त नबियों में कतिपय ऐसे भी थे जो अपने शरीर पर घाव[1] करते थे और जनता पर प्रकट करते थे कि उन आघातों से उन्हें तनिक भी कष्ट नहीं होता था; क्योंकि उन पर देवता की असीम कृपा थी और उसके विज्ञापन के लिये ही वे वैसा किया करते थे। आगे चलकर सूफियों ने घाव को जो फूल समझ लिया उसका मुख्य कारण यही है। घाव तो उसे लोग तब समझते जब उन पर देवता सवार न होता। देवता के प्रसाद को फूल समझना ही उचित था। हिंदी कवि बिहारी ने भी सूफियों की देखादेखी 'सरसई' को कभी सूखने नहीं दिया, खोंट खोंटकर उसे बराबर ताजा रखा; क्योंकि उनकी नायिका को वह क्षत उसके प्रियतम से प्रसाद के रूप में मिला था जो उसके प्रेम को सदा हरा-भरा रखता था।

अपनी शक्ति में कमी देख मनुष्य जिस देवता की कल्पना करता है उसकी शक्ति अपार होती है। फलतः देवता जिस व्यक्ति पर कृपालु होता है उसमें असंभव को संभव करने की क्षमता आ जाती है। उक्त नबियों पर देवता की कृपा थी ही। जनता उनके पीछे लगी फिरती थी। लोग उनको अपना दुखड़ा सुनाते और उन्हें उपहार से लादते रहते थे। धनी-मानी भी उनकी शरण में जाते थे। पानी बरसाने, उपज बढ़ाने, रोगी को अच्छा करने क्या मृतक[2] को जिला देने तक की क्षमता उनमें मानी जाती थी। करामात से वे जनता में अपनी धाक जमाए रहते थे और कभी कभी राजकीय आंदोलनों में भी योग देते थे। उनका रहन-सहन

---

(१) Hosea VII, 14
,, A History of H. Civilization p. 100
(२) Israel p. 446

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सामान्य न था। उनकी निराली चाल-ढाल तथा विलक्षण वेश-भूषा एक हँसी की चीज होती थी। वे नग्न या अर्धनग्न रहते और झुंड में चला करते थे। कभी कभी उनकी संख्या ४०० तक पहुँच जाती थी। उनकी मंडली में किसी संपन्न व्यक्ति का शामिल होना आश्चर्य की बात समझी जाती थी। उनमें एक मुखिया होता था जिसका आदेश सभी मानते थे। उसकी आज्ञा के पालन और सेवा-शुश्रूषा में लोग इतना तत्पर थे कि उसकी मंडलीवाले उसके लिये किसी भी गर्हित काम के करने में संकोच नहीं करते थे। संक्षेप में वह उनका गुरु या मुरशिद था। उनमें पीरी-मुरीदी की प्रतिष्ठा थी।

उक्त नबियों के अतिरिक्त कुछ महानुभाव ऐसे भी थे जिनको लोग काहिन[1] या रोह कहते थे। नबी उल्लास एवं भावावेशवाला भक्त होता था। वह जनता में बहुत कुछ अलौकिक रूप में प्रतिष्ठित रहता था। परंतु काहिन उससे सर्वथा भिन्न एक विचक्षण व्यक्ति होता था। लोग उसके पास भविष्य की चिंता में जाते थे। उससे शुभाशुभ और कुशल-मंगल के प्रश्न करते थे। जो बातें उनकी समझ में नहीं आती थीं उनका रहस्य वे उससे जानना चाहते थे। वह भी शकुन-विचार में मग्न रहता था। स्वप्न तथा अन्य बाह्य लक्षणों के आधार पर वह अपनी सम्मति देता था। कभी कभी किसी जिन या प्रेत से भी उसे सहायता मिल जाती थी। संक्षेप में, वह एक ज्योतिषी के रूप में माना जाता था। उसमें सूफियों का नजूम था। कभी कभी उसको पुजारी का काम

---

(१) Israel p. 442-3
A. H. of H. Civilization p. 139
Religion of the Hebrews p. 75,121

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भी करना पड़ता था। शैमुअल[1] और एरन इसके लिये ख्यात थे। मूसा भी यहाँ के पुजारी थे।

प्राय: लोग कह बैठते हैं कि पीर-परस्ती या समाधि-पूजा सूफियों में भारत के संसर्ग से आई। जो लोग शामी जातियों के इतिहास से सर्वथा अनभिज्ञ हैं, मानव-स्वभाव से भी अच्छी तरह परिचित नहीं हैं, उनकी बात जाने दीजिए। हम आप तो जानते हैं कि सूफियों की बलि-पूजा अति प्राचीन है। यह्वा के कट्टर कर्म-कांडी क्रूर उपासकों के प्रताप से बाल आदि प्राचीन देवताओं की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई, किंतु उनका प्रभाव बराबर काम करता रहा। यह्वा की एकाकी सत्ता का विधान कर उसके फौजी उपासकों ने जिस शासन का अनुष्ठान किया वह इतना संकीर्ण एवं कठोर था कि उसमें हृदय का समुचित निर्वाह न हो सका। जिस बाल को भ्रष्ट कर यह्वा की प्रतिष्ठा हुई थी उसके कतिपय गुणों का आरोप यद्यपि यह्वा में हो गया तथापि उससे जनता की तृप्ति न हुई। उसने वली के रूप में बाल की आराधना कायम की। फरिश्ते भी वास्तव में उन्हीं देवी-देवताओं के रूपांतर हैं जिनका नाश यह्वा अथवा अल्लाह के क्रूर भक्तों ने कर दिया था और जो मानव-स्वभाव की रक्षा के लिये फिर दूसरे रूप में प्रतिष्ठित हो गए। प्राचीन काल से ही यह धारणा चली आती है कि मरण[2] के उपरांत भी जीवन रहता है। शव को मिट्टी कहकर उसका तिरस्कार नहीं किया जाता, प्रत्युत विधि-विधानों के साथ उसको दफनाया जाता है।

---

(१) I Samuel IX 9
Religion of the Hebrews p. 75

(२) Israel p. 229,427,232
I Kings II,6,9
Genesis XXX VII,35

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वह उसी कब्र में पड़ा पड़ा दुःख-सुख भोगता और अपने उपासकों की देख-रेख करता है। स्वयं मुहम्मद साहब कब्र के इस जीवन के कायल थे। शामियों की तो यहाँ तक धारणा थी कि शव[1] अपने वाहकों को मार्ग बताता है। बात यह है कि मानव-हृदय जिसकी आराधना करता है उससे सहसा अलग नहीं हो पाता। वह उसकी सारी चीजों का ध्यान रखता है। पीर-परस्ती या समाधि-पूजा का यही रहस्य है। शामी जातियों में पादप-पूजा भी प्रचलित थी। सीरिया में आज तक उसकी प्रतिष्ठा है। अस्तु, सूफियों की समाधि-पूजा परंपरागत है। वे आज भी पीर की समाधि को हज समझते हैं।

सूफीमत में 'जिक्र' की बड़ी प्रतिष्ठा है। जिक्र की पद्धति-विशेष के संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि उसके स्वरूप में देश-काल के अनुकूल परिवर्त्तन होता रहता है। उक्त नबियों में जिक्र का क्या स्थान था, यह हम ठीक ठीक नहीं कह सकते। परंतु इतना अवश्य जानते हैं कि उनमें उपवास और मुद्रा-विशेष का प्रचलन था। एलिजा[2] यह्वा की आराधना में घंटों घुटनों के बीच सिर दबाए पड़ा रहता था। प्रतीत होता है कि एलिजा के पहले भी कतिपय योग-मुद्राओं का प्रचार था और नबी उनके अभ्यास में लगे रहते थे।

उक्त नबियों के संबंध में अब तक जो कुछ निवेदन किया गया है उसका सारांश यह है कि यह्वा की प्रतिष्ठा से प्रथम ही इब्रानी जाति में जो गुह्य मंडली थी उसमें उल्लास का पूरा विधान था। उल्लास के संपादन के लिये मादक द्रव्यों, विशेषतः सुरा का सेवन किया जाता था। सुरा के प्रभाव से जो आनंद उत्पन्न होता था

---

(१) Israel p. 427

(२) I Kings XVII, 42

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वह तो था ही; संगीत के आवेश में जो अभिनय, उछल-कूद, लपक-झपक, बक-झक आदि उपद्रव होते थे उनसे उल्लास का रंग और भी चोखा हो जाता था और उसी को लोग देवता का प्रसाद समझने लग जाते थे। नाट्यों की अधिकता एवं भावों के प्रबल उद्रेक के कारण नबियों को मूर्च्छा आ जाती थी। इस दशा में जो कुछ उनके मुँह से निकल पड़ता था वही इलहाम होता था। उनकी चेतना देवता की चेतना समझी जाती थी। आज भी बहुत सी अशिक्षित जातियों में इस हाल और इलहाम का दर्शन हो जाता है और हम उनके पात्रों को 'दर्शनियों' के रूप में पाते हैं।

एक ओर से तो नबियों का यह उल्लास काम कर रहा था और दूसरी ओर से यह्वा के कट्टर सिपाहियों का विरोध चल रहा था। विरोध एवं विध्वंस के कारण बाल, कदेश एवं ईस्टर प्रभृति देवी-देवताओं की मर्यादा भंग हो गई और उनके विवाहित व्यक्तियों को या तो उन पर अश्रद्धा हो जाने के कारण उनको तिलांजलि दे यह्वा के संघ में भर्ती होना पड़ा या उनके वियोग में उनकी अमूर्त्त सत्ता का मूर्त्त के आधार पर विरह जगाना पड़ा। शामी जातियों में मूर्त्तियों के चुंबन, आलिंगन आदि की जो व्यवस्था थी वह मूर्त्तियों के साथ प्रत्यक्ष रूप में तो नष्ट हो गई, पर परोक्ष रूप से वही आज तक सूफियों के बोसे और वस्ल में बदस्तूर बनी है। आज भी मक्का के संग-असवद के चुंबन तथा हज के अन्य विधानों में उसकी झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

उपर्युक्त समीक्षण के सिंहावलोकन में हम भली भाँति कह सकते हैं कि सूफीमत के सर्वस्व मादन-भाव का मूल स्रोत वही गुह्य मंडली है जिसमें कहीं सुरा-सेवन हो रहा है, कहीं राग अलापा जा रहा है, कहीं उछल-कूद मची है, कहीं कोई तान छिड़ी है, कहीं गला फाड़ा जा रहा है, कहीं स्वाँग रचा जा रहा है, कहीं हाल

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आ रहा है, कहीं इलहाम हो रहा है, कहीं झाड़-फूँक मची है, कहीं करामात दिखाई जा रही हैं, कहीं कुछ हो रहा है, कहीं कुछ। कहीं कोई किसी हाल में बेहाल है तो कहीं कोई किसी मौज में मग्न। संक्षेप में सर्वत्र उन्हीं क्रिया-कलापों का व्यापार हो रहा है जो आजकल की दरवेश-मंडली में प्रतिष्ठित हैं और जिनके व्याकरण में सूफी आज भी तत्पर हैं।

उक्त नबियों की धाक तब तक जमी रही, उनका रंग तब तक चोखा रहा जब तक यह्वा के कट्टर सिपाही जोर में न आए। यह्वा की पूरी प्रतिष्ठा स्थापित हो जाने पर भी उनका प्रभाव काम करता रहा। साल के समान प्रतिष्ठित व्यक्ति भी उनके चक्कर में आ गया। एलिश और एलिजा भी उनसे प्रभावित हो गए। एलिश के युग में तो उनका संघ स्थापित हो गया था और पवित्र नगरों में प्रायः उनके मठ भी बन गए थे। परंतु यह्वा के धुरीण सेवकों को संतोष न हुआ। जरमिया[1] उनके विनाश पर तुल गया। एमा, एमस और होसिया ने भी कुछ उठा नहीं रखा। फलतः अमरद कुत्ते[2] कहलाए और देवदासियों की दुर्गति होने लगी। परंतु उक्त नबियों की बेतसी-वृत्ति और मानव-भाव-भूमि ने उनकी सदैव रक्षा की और उनकी परंपरा समय समय पर फलती-फूलती रही। वस्तुतः उन्हीं की भावना का प्रसाद प्रचलित सूफ़ीमत है जो अन्य मतों से इतना ओत-प्रोत हो गया है कि उसके उद्गम के विषय में न जाने कितने मत चल पड़े हैं। निस्संदेह, सूफ़ियों के परदादा उक्त नबी ही हैं जो सहजानंद के उपासक और उल्लास के परम भक्त थे। सत्व-शुद्धि के लिये उनमें नाना

(१) Jeromiah XXVI 7-16, XXIII 9-40
(२) Deuteronomy XXIII 18

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रकार के उपचार प्रचलित थे और वे प्रियतम[1] के संयोग के लिये परम प्रेम का राग अलापते थे। जिन मनीषियों[2] ने उनकी पूरी छान-बीन और आधुनिक दरवेशों का प्रत्यक्ष दर्शन किया है उनकी भी कुछ यही राय है। हाँ, मसीह या मुहम्मद तक ही दृष्टि दौड़ानेवाले समीक्षक अभी उसको स्वीकार नहीं करते। फिर भी आशा होती है कि उक्त विवेचन के आधार तथा अन्य पंडितों के प्रमाण पर किसी मनीषी को उसमें आपत्ति न होगी कि वास्तव में मादन-भाव के जन्मदाता उक्त नबी ही हैं और उन्हीं की भावना एवं धारणा की रक्षा का सच्चा प्रयत्न सूफीमत या तसव्वुफ है।

(२)

गत प्रकरण में हमने देख लिया कि सेनानी यह्वा के साहसी सिपाही नबियों के उल्लास के विरोध में किस तत्परता से काम कर रहे थे। बात यह है कि यह्वा एक विदेशी देवता था। उसकी कृपा न जाने क्यों बनी-इसराईल पर इतनी हो गई कि उसने मूसा द्वारा उसका उद्धार किया। कहा जाता है कि इसराईल का अर्थ ही होता है कि देवता युद्ध करता है। यह्वा रणक्षेत्र में स्वयं

---

(१) इसराईल नामक पुस्तक (पृ० २४३) में लाड्स महोदय लिखते हैं कि देव-संतानों या देवताओं का विवाह मनुष्य की पुत्रियों के साथ यह्वा के उपासकों की दृष्टि में भी हो जाता था। अरब भी इस विश्वास के कायल थे कि किसी जिन का प्रणय किसी इंसान के साथ हो जाता है। अरबी सा उद्भट विद्वान् भी इस प्रकार के प्रणय में विश्वास करता था। कहने का तात्पर्य यह कि इस प्रकार के प्रणय में उस समय जनता का पूरा विश्वास था और प्रियतम के परम होने के कारण प्रेम को भी परम होना पड़ा। देखिए—जेनेसिस, ६, १-४।

(२) Israel p. 444, The Spirit of Islam p. 471 Asianic Elements in Greek Civilization p. 192 The Religion of the Hebrevs p. 116

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रतीक के रूप में रहता और सेना का संचालन करता था। जिस संपुट में उसका प्रतीक रखा रहता था उसको किसी अन्य भूमि पर रख देना उचित नहीं समझा जाता था। एलिश (मृ० ७८१ प०) को उसके संपुट[1] की संस्थापना के लिये मिट्टी लादकर रण-क्षेत्र में ले जानी पड़ी थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह्वा के उपासकों की इस संकीर्णता और कठोरता में मादन-भाव का निर्वाह न था। परंतु भावों एवं मतों के इतिहास से स्पष्ट अवगत होता है कि किसी भी भाव अथवा मत का विनाश नहीं होता; अधिक से अधिक उनका तिरोभाव हो जाता है। अवसर पाने पर उनमें फिर बहार आती है और उनकी सुरभि से मस्त हो संसार फिर उन्हीं का गीत गाता है। मादन-भाव के विकास में भी यही बात है। यह्वा के कट्टर कर्मकांडी मादन-भाव के विरोध में जी-जान से मर मिटे, पर यह्वा में 'बाल' आदि देवी-देवताओं के गुणों का[2] आरोप हो हो गया। जो स्त्रियाँ अन्य जातियों से बनी-इसराईल के घरों में आती थीं उनके देवता भी उनके साथ लगे आते थे। घोर विरोध करने से किसी प्रकार अन्य देवों का बहिष्कार तो हो गया, पर साथ ही साथ यह्वा में उनके गुणों का आरोप भी हो गया। परिणाम यह निकला कि यह्वा की आराधना में मादन-भाव की झलक बराबर बनी रही और समय पाकर 'क़शाला' के रूप में उसकी कला फूट निकली। यहाँ यहूदियों के 'क़बाला'[3] एवं 'तालमंद' के विषय में अधिक न कह केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि उनमें गुह्य-विद्या का बहुत कुछ सन्निवेश है और वे हैं भी एक प्राचीन परंपरा के उज्ज्वल रत्न। उनके अवलोकन से मादन-भाव के इतिहास पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

---

(१) II Kings V. 1
(२) Israel p. 405, 407.
(३) Hebrew Literature, Introduction.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यह्वा इसराईल की संतानों का नायक था, नेता था, स्वामी था, शासक था, अधिपति था, संक्षेप में प्रियतम के अतिरिक्त सभी कुछ था। उसकी दृष्टि में उसके सामने किसी अन्य देवता की उपासना अक्षम्य व्यभिचार ही नहीं, घोर पातक एवं भीषण पाप की जननी भी थी। उनके विचार में यह्वा रति-क्रिया से सर्वथा मुक्त था, अतः उसके मंदिर अथवा भाव-भजन में किसी प्रकार उल्लास को आश्रय नहीं मिल सकता था। फिर भी हम स्पष्ट देखते हैं कि यह्वा के मंदिरों में देवदासों तथा देवदासियों की चहलक़दमी तो थी ही; उसके भावुक भक्तों ने उसके लिये[1] पत्नी का विधान भी कर दिया था। यद्यपि यह्वा के साहसी सेवकों ने धीरे धीरे उसके भवन से पवित्र व्यभिचार को खदेड़ दिया तथापि उसका सूक्ष्म रूप यह्वा के उपासकों में बना रहा। यह्वा व्यक्ति-विशेष का पति भले ही न बना हो, पर बनी-इसराईल का भर्त्ता तो अवश्य था। होसिया[2] ने यह्वा के इस रूप पर ध्यान दिया। उसको अपनी पत्नी के प्रेम-प्रसार में यह्वा का प्रमाण मिला। उसने उसी प्रकार गोमर को, जो संभवतः देवदासी थी, प्यार किया, उससे विवाह किया, उसके व्यभिचार को क्षमा किया, जिस प्रकार यह्वा ने इसराईल की संतानों से प्रेम किया, उनका पाणि-ग्रहण किया, उनके व्यभिचारों को क्षमा कर सदैव उनका पालन-पोषण किया। यह्वा और होसिया के प्रेम-प्रसार में वास्तव में केवल आलंबन का विभेद है, रति-प्रक्रिया का कदापि नहीं। जाति और व्यक्ति, समष्टि एवं व्यष्टि की यह भावना मसीही मत में भी फूलती-फलती रही और आगे चलकर उसमें माधुर्य या मादन-भाव का पूरा प्रचार हो गया।

---

(१) Israel p. 124.

(२) Social Teachings of the Prophets & Jesus p. 54

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मादन-भाव अथवा देवात्मक रति-विधान में आलंबन की विशेषता ही मुख्य होती है। यह आलंबन जितना ही मोहक होता है उतना ही अलभ्य भी। सच बात तो यह है कि इस अलभ्यता के कारण ही रति को परम प्रेम की पदवी मिलती है। यदि आलंबन सहज में उपलब्ध हो जाय तो शायद प्रेम को अलौकिक सिद्ध करने का साहस किसी भी विचारशील व्यक्ति को न हो। सूफियों ने इश्क मजाजी को इश्क हकीकी का जीना मानकर यह स्पष्ट कर दिया कि इश्क मजाजी भी कोई चीज है। बिना उसकी सहायता लिये इश्क हकीकी का गीत गाना पाखंड है। सूफियों ने इश्क हकीकी को इश्क मजाजी के परदे में इस तरह दिखाया है कि उसको देखकर सहसा यह नहीं कहा जा सकता कि उनका वास्तविक आलंबन अमरद[1] है या अल्लाह है। 'गीतों के गीत' अथवा 'सुलेमान के गीत' में भी प्रेम की ठीक यही दशा है। अधिकांश अर्वाचीन विद्वानों का, जो मादन-भाव के विरोधी तथा विज्ञान के कट्टर भक्त हैं, मत है कि प्रकृत गीतों में ईश्वर के प्रेम का वर्णन नहीं है। उनका कहना है कि प्राचीन काल में विवाह के अवसर पर जो गीत गाए जाते थे उन्हीं के

---

(१) अमरद फारसी का प्रचलित माशूक है। इसके संबंध में श्री हरिऔधजी का कथन है "उक्त भाषाओं (अरबी, फारसी और उर्दू) में माशूक आम तौर से अमरद होता है" (रसकलस, भूमिका, पृ० १२१)। आप अन्यत्र लिखते हैं—"तब भला मरदानगी कैसे रहे, मूँछ बनवा जब मरद अमरद बने।" स्पष्ट अर्थ इसका यह है कि मूँछ बनवाकर मरद अमरद अर्थात् नपुंसक या हिजड़ा वा जनाना बन जावे। परंतु श्लेष से व्यंजना यह है कि बिना मूँछ का लौंडा बन जावे, क्योंकि फारसी में बिना मूँछ-दाढ़ी के लौंडे को अमरद कहते हैं" (बोलचाल, भूमिका, पृ० ६७)। अमरद वास्तव में अरबी शब्द है, फारसी के प्रचलित शब्द मर्द से उसका कुछ भी संबंध नहीं है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संग्रह का नाम 'सुलेमान के गीत' है। जो लोग उक्त गीतों को एक ही व्यक्ति की रचना समझते हैं उनमें भी कुछ ऐसे हैं जो इनको विवाहपरक ही बतलाते हैं, उन्हें ईश्वरपरक नहीं कहते। परंपरागत विचारों के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उनका धार्मिक महत्त्व अवश्य ही अक्षुण्ण रहा है। फीलो, ओरिगन, टर्टुल्लियन आदि[1] मनीषियों की दृष्टि में आध्यात्मिक विवाह ही इन गीतों में इष्ट है। परमात्मा और जीवात्मा, ईश्वर और भक्त ही इन गीतों के दुलहा तथा दुलहिन हैं। ध्यान देने से इन गीतों की क्रियाओं तथा सर्वनामों में लिंग[2]-विपर्यय गोचर होता है। स्त्रीलिंग के स्थल पर पुल्लिग का प्रयोग भी इनमें मिल जाता है। जान पड़ता है कि इन गीतों में स्त्री और पुरुष दोनों ही क्रमशः आश्रय तथा आलंबन हैं। एकिब[3] इनको सर्वपुनीत और जोजेफस[3] इनको ईश्वरपरक समझता था। होसिया भी इनसे अनभिज्ञ न था। सारांश यह कि इन गीतों के अध्यात्म का आभास बायबिल में भी मिलता रहा है और इन्हीं के आधार पर मसीह दुलहा और चर्च या व्यक्ति-विशेष दुलहिन बनते चले आए हैं। सच बात तो यह है कि इनमें सूफियों का इश्क हकीकी इश्क मजाजी के परदे में छिपा है। लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रेम का निरूपण ही इनका प्रतिपाद्य विषय है। आज भी सूफी इन गीतों की पद्धति पर पद-रचना कर रहे हैं। निदान इन गीतों को उन नबियों का प्रसाद समझना चाहिए जो उल्लास के विधायक और मादन-भाव के भक्त थे।

उक्त गीतों के अतिरिक्त प्राचीन बायबिल में कतिपय स्थल और भी ऐसे हैं जिनके आधार पर भली भाँति सिद्ध किया जा सकता

---

(१) Christian Mysticism p. 370
(२) The song of songs p. 8
(३) The song of songs p. 88

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है कि नबियों की उक्त परंपरा बराबर चलती रही। प्रेम के अनंतर सूफियों में संगीत का प्रचार है। प्राचीन बायबिल में संगीत-प्रिय नबियों[1] की कमी नहीं। एलिश को यह्वा की प्रसन्नता के लिये उसके मंदिर में संगीत का विधान करना पड़ा। दाऊद[2] यह्वा के संपुट[3] के सामने नाचता था। स्त्रियाँ संगीत के साथ वीरों का स्वागत करती थीं। इब्रानी शब्द हग (उत्सव) का अर्थ ही नाच होता है। प्रेम-गीत का प्रधान बाजा उगाव था जिसका धात्वर्थ उत्कंठित करना होता है। प्रेम और प्रणय के गीत के साथ ही साथ सुरा के भी गीत गाए जाते थे। इस प्रकार उनमें प्रेम, संगीत और सुरा का प्रचार था। इशाया[4] में प्राचीन नबियों का उल्लास था। वह तीन वर्ष तक यूरुसलम में नग्न भ्रमण करता रहा। उसने प्रतीक का प्रयोग कर मादन-भाव को प्रोत्साहित किया। एक महाशय की दृष्टि में तो उसने 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा कर अद्वय का प्रतिपादन किया। सचमुच ही उसके गान में वेदना है, करुणा है, कामुकता है। संक्षेप में वह अंशतः सूफी है। उसके अतिरिक्त अन्य नबियों में भी हाल, इलहाम और करामात की पूरी प्रतिष्ठा थी। जोशुआ[5]

---

(१) Israel p. 275

(२) II Samuel VI, 14

(३) प्रायः लोगों की धारणा है कि यह्वा की उपासना में प्रतिमा या प्रतीक की प्रतिष्ठा न थी, किंतु खोज से पता चलता है कि यह्वा का प्रतीक एक संपुट में रखा जाता था और लोग उसे संग्राम में भी साथ रखते थे। इस दृष्टि से उसकी उपासना शालिग्राम की उपासना के तुल्य थी। (The Religion of the Hebrews p. 92, 94 Israel p. 427)

(४) A History of H. Civilization p.323,327. The Religion of the Hebrews p. 170

(५) Joshua VIII. 18, 26

,, X 12-13

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

की आज्ञा का पालन मार्तंड तक करता था। तात्पर्य यह कि मादन-भाव के अन्य अवयवों का भी आभास प्राचीन बायबिल में बराबर मिलता है। यह्वा के उपासकों में भी मादन-भाव का कुछ न कुछ प्रसार अवश्य था, जो अवसर पाकर अपना पूरा रंग दिखा जाता था।

मसीह के आविर्भाव से शामी जातियों में निवृत्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा हुई। मसीह के गुरु जान (योहन्ना) एक एसीन थे। एसीन संप्रदाय के विषय में एक समीक्षक[1] का निष्कर्ष है कि एसीनों का यदि एक अंश शामी है तो तीन अंश बौद्ध। निवृत्ति-प्रधान एसीनों से मसीह को संसार से अलग रहने की शिक्षा मिली। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे और विरति पक्ष को दृढ़ करते रहे। उनका हृदय मूसा से कहीं अधिक उदार और कोमल था। अतएव उनकी भक्ति-भावना में परमपिता की प्रतिष्ठा हुई, सेनानी यह्वा की नहीं। जिस करुणा और जिस मैत्री को लेकर मसीह आगे बढ़े उनमें हृदय की उदात्त वृत्तियों का पूरा प्रबंध था। पर उनके उपरांत ही उनके उपासकों की दृष्टि संकीर्ण हो गई; और मसीही संघ में पाल और जान के मत चल पड़े। पाल का दावा था कि स्वयं अलौकिक अथवा दिव्य मसीह ने उसे दीक्षा दी थी। फिर क्या था, उसके संदेश चारों तरफ जाने लगे। वह मसीह का कट्टर खलीफा बन गया। यद्यपि वह मसीही संघ का उद्भट पंडित और प्रचारक था, स्वयं ब्रह्मचारी और प्रणय का विरोधी था तथापि उसने विवाह का रूपक लिया। उसका संदेश[2] है "तुम (रोमक) भी अन्य से विवाहित हो सको, जो मृतक से जी उठा है।" स्पष्टतः पाल के इस कथन में उपासक और उपासक के संबंध में पति-पत्नीभाव निहित है। पाल के

(१) Was Jesus influenced by Buddhism p. 114

(२) Romans VII. 4

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अन्य[1] संदेशों से पता चलता है कि उस समय नबियों की प्राचीन परंपरा कायम थी। पाल के उपरांत जान ने मसीह को जो रूप दिया वह दार्शनिक तथा बहुत कुछ अ-शामी है। उसका प्रभाव शामी मतों पर इतना गहन पड़ा कि उसकी मीमांसा यहाँ नहीं हो सकती। उसके प्रजात्मक विवेचन पर विवाद न कर हमें स्पष्ट कह देना है कि उसमें भी मादन-भाव की झलक मिलती है। उसने परमेश्वर को प्रेमरूप तो सिद्ध ही किया; एक[2] स्थल पर मसीह को दुलहा तथा उनके गुरु जान को उनका मित्र कहलाकर मसीह के भक्तों को दुलहिन बनने का संकेत भी कर दिया। हो सकता है कि पाल तथा जान पर रोम तथा ग्रीस की गुह्य टोलियों का प्रभाव भी पड़ा हो और प्लेटो के प्रेम ने भी कुछ अपना असर दिखाया हो। जान और गीता का साम्य भी विचारणीय है।

प्लेटो ने[3] जिस प्रेम का निरूपण किया था वह उसकी वासना और चिंतन का परिणाम था। यूनानियों अथवा आर्य जातियों में बुद्धि की उपासना थी। शामियों की तरह आर्य बुद्धि को पाप की जननी नहीं समझते थे। फलतः प्लेटो ने जिस प्रेम का प्रवचन किया उसका प्रसार शीघ्र ही शामी संघ में हो गया। जिस भाव की आराधना में लोग उन्मत्त थे उसी का एक प्रकांड पोषक मिल गया। फिर भी प्लेटो के आधार पर यह नहीं कहा जा

---

(१) I Corinthians XIV. 37, XI, 3; Ephesians V 22-23, 25; Christian Mysticism p. 172

(२) Johu III 29

(३) प्लेटो पर विचार करते समय रम्जे महोदय के इन शब्दों पर ध्यान रखना चाहिए Plato was guided by ancient ideas, and was not inventing novelties: his model is often to be sought in Autolia or farther east." Asiatic elements in Greek civilization p. 254

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सकता कि मादन-भाव का उदय ग्रीस की गुह्य टोलियों में ही हुआ। हम पहले ही कह चुके हैं कि वासना का मुक्त विलास, संभोग की स्वच्छंद लीला, आवेश का अलौकिक आदर, व्यभिचार का पवित्र स्वागत, संगीत का उत्क्रांत विधान एवं नाना प्रकार की अजीब बातों के साथ सुरा-सेवन प्रभृति अनोखे कृत्यों का पूरा प्रसार संसार के सभी देशों की गुह्य मंडलियों में था। इन मंडलियों की रति-प्रक्रिया और उल्लास के साध्य, आनंद का आस्वादन आगे चलकर अलौकिक प्रेम के रूप में परिस्फुटित हुआ और लोग सहजानंद के उपासक बने रहे। भारत में सहजानंद के जो व्याख्यान हुए उनके संबंध में कुछ निवेदन करने की आवश्यकता नहीं। यहाँ केवल यह स्पष्ट करना है कि आर्य जातियों ने बुद्धि के बल पर सहजानंद का जैसा निरूपण किया वैसा शामी जातियों में न हो सका, पर वे उसके प्रसाद से वंचित न रहे। शामी जातियों में अन्य जातियों से भाव-ग्रहण करने की तत्परता बराबर थी। यहूदी जाति तो व्यापार में कुशल थी और भारत तथा ग्रीस के व्यापार में मध्यस्थ का काम करती थी। फलतः उस पर आर्य-संस्कृति का पूरा प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव में पणि, हिट्टी, मितन्नी आदि जातियों का पूरा योग था। यहूदी जाति में जो कई संप्रदाय चल पड़े थे उसका प्रधान कारण बाहरी प्रभाव ही था। ग्रीस, फारस और भारत के संसर्ग में आ जाने से शामी जातियों में "बुद्धौ शरणमन्विच्छ" का सिंहनाद आरंभ हुआ। फीलो (मृ० ५७ प०) ने मूसा और प्लेटो के मतों का समन्वय इष्ट समझा। यहूदी संघ में वाद-विवाद तर्क-वितर्क होने लगे। एसीनों[1] में गुह्य विद्या का प्रचार हो गया और वे एक प्रकार के संन्यासी या भिक्षु बन गए। मसीह आरंभ में एसीन थे। यद्यपि

(१) Was Jesus influenced by Buddhism p. 114-15

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उन पर आर्य-प्रभाव कम न थे तथापि उनमें ज्ञान की अपेक्षा भक्ति ही प्रधान थी। उनके उत्साही भक्त ज्ञान की उपेक्षा कर जिस 'प्रसाद' को लेकर आगे बढ़े उसमें आश्वासन की अपेक्षा अभिशाप ही अधिक था। उनकी दृष्टि में परमपिता के एकाकी पुत्र पर ही विश्वास लाना मुक्ति का मार्ग था। किंतु मनुष्य स्वभावतः चिंतनशील प्राणी है। अंधकार में वह अधिक दिन तक नहीं ठहर सकता। अतएव, जिनका मसीह पर विश्वास नहीं जमा उनमें बुद्धि का व्यापार बढ़ा। मसीही संघ ने उनको नास्टिक की उपाधि दी।

कहा जाता है कि नास्टिक मत का प्रवर्त्तक साइमन[1] नामक मग था। मग जाति का तसव्वुफ में कितना योग है, इसका अनुमान शायद इसी से किया जा सकता है कि सूफी आज भी 'पीरेमुगाँ' का जाप जपते हैं और उनसे मधु-पान की याचना करते हैं। इससे स्पष्ट अवगत होता है कि नास्टिक मत वस्तुतः सूफी मत का सहायक था। नास्टिक मत यथार्थ में एक यौगिक मत का नाम था। उसमें उस समय के सभी प्रचलित मतों का योग था। सारग्राही जीवों ने अपनी मधुकरी वृत्ति से जिज्ञासा के आधार पर जिस तत्त्व का संग्रह किया वही नास्टिक मत के नाम से ख्यात हुआ। नास्टिक मत के व्यर्थ के विश्लेषण में न पड़, हम इतना ही कह देना अलं समझते हैं कि उसमें केवल मादन-भाव का प्रचार ही न था, अपितु उसका प्रतिपादन भी हो रहा था। सूफियों का एक पुराना नाम[2] नास्टिक भी था। पाल के संदेशों में जिन विवादियों का उल्लेख किया गया है वे वास्तव में नास्टिक ही थे। तसव्वुफ पर नास्टिक मत का प्रभाव सभी मानते हैं; पर इस

(१) En. of Religions and Ethics
(२) The Early development of Mohammedanism p. 144

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बात पर ध्यान नहीं देते कि सूफी मत का एक पुराना रूप नास्टिक मत भी था। वास्तव में दोनों एक ही मत के दो भिन्न रूप हैं जो अपनी प्राचीन परंपरा का पूरा पूरा पता देते हैं।

नास्टिकों की बिखरी शक्ति का संपादन कर मनी ने जिस मत का प्रवर्त्तन किया वह सहसा भारत से स्पेन तक फैल गया। मसीही उससे दहल उठे। मादन-भाव के विकास अथवा सूफी-मत के इतिहास में मनी-मत के योग पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। मनी ने मतों का समन्वय कर जो वातावरण उत्पन्न किया उसका प्रभाव स्वयं मुहम्मद साहब पर कम न पड़ा। मुहम्मद साहब ने मसीह के जीवन तथा मरण के संबंध में जो संदेह किया उसकी प्रेरणा इसी मत की ओर से हुई थी। उन पर भी आरंभ में मनी-मत का आरोप किया गया था। कुछ लोग उन्हें भी मनी का अनुयायी समझ रहे थे। यही नहीं, हल्लाज को इसी मत का प्रचारक कहकर दंड दिया गया और आगे चलकर मनी-भक्त जिंदीक के नाम से ख्यात हुए।

मसीही संघ को व्याकुल करने तथा अपने को मसीह एवं बुद्ध घोषित करनेवाला मनी[1] जन्मतः पारसी था। उसका जन्म संवत् २७२ में बगदाद में हुआ था। जिज्ञासा की प्रबल प्रेरणा से उसने भारत तथा चीन की यात्रा की। उस पर बौद्धमत का अकथ प्रभाव पड़ा। मसीही लेखक उसको टिरिविंथस[2] (त्रिविंशत) बुद्ध कहते हैं। पीरोज[3] की मुद्राओं पर उसका नाम 'बुल्द'मय अंकित है। कहा गया है कि वास्तव में यह 'बुल्द' बुद्ध का रूपांतर है। मनी-मत में बुद्ध-मत की भाँति ही स्त्री-पुरुष दोनों ही

---

(१) Origin of Manicheism p. 15
(२) Theism in Medieval India p. 91
(३) Origin of Manicheism p.16 (Muslim Review)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दीक्षित होते थे। मनी-मत भी व्यापक, शांत, तपी और असंसारी था। बुद्धि, विवेक, विचार, भावना और कल्पना उसके मत के प्रधान अंग या पंचगुरु थे। उसने ईश्वर को केवल प्रकाश प्रतिपादित किया। उसके मत में ईश्वर की कृपा का विशेष महत्त्व था। संक्षेप में, गुरु-शिष्य-परंपरा का विधान कर, मूर्त्तियों का खंडन तथा जन्मांतर का निरूपण कर मनी ने जिस समन्वयवादी मत का प्रचार किया उसका दर्शन सूफी मत के रूप में प्रायः मिला करता है। सूफियों का स्वतंत्र दल, जो जिंदीक के नाम से प्रसिद्ध है, वस्तुतः मनी-मत का अवशिष्ट है। स्वयं मनी को प्राण-दंड मिला और उसके मत की प्राण-प्रतिष्ठा तसव्वुफ में हो गई। एक विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि मनी-मत के अवशिष्ट[1] पदों में माधुर्य-भाव का अर्चन करना चाहिए। अन्य महाशय का उपालंभ[2] है कि केवल रति के आधार पर परमेश्वर की आराधना करना मनी-मत का अपराध है। इन जिंदीकों को काम-वासना में ईश्वर की भक्ति सूझती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सूफीमत का सामान्य रूप मनी-मत में खिल उठा था।

शामी शांति के भूखे थे। पर शांति की ओट में मसीहियों ने जिस अशांति का बीज-वपन किया उससे हमें कुछ मतलब नहीं। हमको तो केवल इतना देख लेना है कि रोम तथा ग्रीस में पहुँचकर मसीही मत किस रूप में ढल गया। रोमक शक्ति के उपासक थे। उनका अधिकतर संबंध शासन से रहा है। उनमें भी गुह्य टोलियाँ थीं, किंतु उनसे प्रकृत विषय में कुछ विशेष सहायता नहीं मिलती। ग्रीक सौंदर्य के भक्त थे। उनकी जिज्ञासा ने काम-वासना को जो परम रूप दिया वह सदा पल्लवित होता रहा। प्लेटो की प्रतिभा

(१) Origin of Manicheism p. 30
(२) Studies in the psychology of the mystics p. 161-2

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ने जिस प्रेम का निरूपण किया वह विषय-जन्य होने पर भी अलौकिक हो गया। प्रज्ञा और प्रेम के प्रणय से प्लेटो ने जिस समाज का सृजन किया उसका प्रत्यक्ष दर्शन भले ही किसी को न मिला हो; किंतु उसके प्रभाव से सारा देश लहलहा उठा। ग्रीस में उसके उपरांत जो ज्ञान-धारा उमड़ी उसमें शामी मत प्रायः डूब से गए। फीलो के समान यहूदी पंडित ने मूसा और प्लेटो का समन्वय इष्ट समझा और मादन-भाव का पक्ष लिया। पाल और जान के संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि उन पर आर्य जाति का प्रभाव निर्विवाद है। पाल[1] ने मरण में जीवन एवं आदर्श में जो परम प्रकाश का प्रतिपादन किया, जान ने मसीह को जो 'प्रेम', 'प्रकाश' और 'प्रगति' कह उनको 'शब्द' सिद्ध किया, इन सब बातों का सारा श्रेय आर्य जाति को ही है। फीलो की भाँति ही क्लेमेंट (मृ० २७७ प०) ने भी मसीह और प्लेटो के मतों को एक में जोड़ दिया। ग्रीस के दार्शनिक[2] विचारों में भारत का कितना योग था, इसका निश्चय अभी तक न हो सका। पर इतना तो निर्विवाद है कि प्लोटिनस (मृ० ३१७ प०) ने भारतीय दर्शन के आधार पर प्लेटो के प्रेम और पंथ को पुष्ट किया। भारत के संसर्ग से यूनान में जो दार्शनिक लहर उठी, सिकंदरिया में जो जिज्ञासा जगी, उनके प्रवाह से शामी मतों में चिंतन का प्रचार हो गया। फीलो, पाल, जान, क्लेमेंट तक ही उसका प्रभाव सीमित न रहा, ओरिगन (मृ० ३१० प०), टर्टुल्लियन, आगस्टीन (मृ० ४८७ प०) और डायोनीसियस

---

(१) Christian Mysticism p. 20, 67

(२) रम्जे महोदय का कथन है "Every attempt to create a European Greek domination on the Asianic coasts has resulted in disaster and ruin" (A.E. in G. Civilization p. 301)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(मृ० ४८२ प०) प्रभृति संत भी इसके प्रवाह में अभिषिक्त हुए। ओरिगन[1] ने सुलेमान के गीत की टीका की, शिक्षितों तथा अशिक्षितों के धर्म में विभेद स्थापित किया। टर्टुल्लियन[2] ने स्पष्ट कहा कि यदि जीवात्मा दुलहिन है तो शरीर दहेज है। आगस्टीन[3] अपने को ब्रह्म कहना ही चाहता था कि शामी-संकीर्णता के कारण रुक गया। डायोनीसियस मसीही संतों में एक पहेली सा हो गया। नव-प्लेटो-मत के सेक के प्रभाव से उसने मसीही मत में भक्ति-भाव को जो रूप दिया वह सर्वथा सूफियों के अनुकूल था। बहुत से लोग तो डायोनीसियस को सूफी मत का सारा श्रेय दे देने में भी नहीं हिचकते। सारांश यह कि आर्य जाति की कृपा से मादन-भाव की धारा स्वच्छ, संयत एवं सबल हो शामीसंघ को आप्लावित करती रही और अपनी रक्षा के लिये कुछ तर्क-वितर्क भी करने लगी।

प्लोटिनस संसार के उन इने-गिने व्यक्तियों में है जो किसी ईश्वर का संदेश लेकर नहीं आते, प्रत्युत अपनी अनुभूति से उसे कण कण में देखते ही नहीं बल्कि औरों को उस दिव्य चक्षु का पता भी बता देते हैं जो मनुष्यमात्र की थाती है और जिसे विभु ने आदर्श-रूप से सबके हृदय में रख दिया है। प्रसिद्ध ही है कि तृष्णा के शमन के लिये वह[4] पारस तक आया था। उस पर वेदांत का इतना व्यापक एवं गहन प्रभाव है कि वह सहज ही भारत का ऋणी सिद्ध हो जाता है। पृथिवी से लेकर नक्षत्र-मंडल तक उसे जिस एकार्का सत्ता का आलोक मिला उसका निदर्शन[5] उसने

---

(१) Christian Mysticism p. 101
(२) ,, ,, Appendix D.
(३) The Mystics of Islam p. 118
(४) A Literary History of Persia p. 420
(५) The Philosophy of Plotinus p. 12, 14, 23

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इतने अनूठे तथा मनोरम ढंग से किया कि उसके उपरांत सभी उस पर मुग्ध हो उस एक की आराधना में तल्लीन हो गए। सूफ़ीमत के अध्यात्म में उसका योग अचल है। बाह्य दृष्टि को फेरकर अभ्यंतर की जो उसने परीक्षा की तो उसमें उसको उस एक का दर्शन मिला जिसको देखकर फिर और कुछ देखना शेष नहीं रह जाता। उसने हृदय के भीतर झाँकने का अनुरोध किया और संसार से उड़ भागने की दीक्षा दी। उसकी दृष्टि में आत्मा का न तो जन्म होता है न मरण। उसके विचार में 'सत्यं शिवं सुंदरं' का आधार दृश्य से परे और अज्ञेय है। समाधि में उसका साक्षात्कार हमें हो जाता है; अतः हम परमानंद से वंचित नहीं रह सकते। प्लोटिनस का यह आनंद प्रज्ञा एवं प्रेम का प्रसव है, किसी उमंग या उल्लास का फल नहीं। इसमें संयम है, नियम है, तप है; किंतु हठ का नाम नहीं। प्लोटिनस दृढ़ता के साथ आग्रह करता है कि यदि आत्मा परमात्मा के अनुरूप न होती तो उसको उसका साक्षात्कार किस प्रकार संभव था। संक्षेप में, प्लोटिनस ने जिज्ञासु प्रेमियों के लिये एक राजमार्ग निर्धारित कर दिया, जिस पर चलकर न जाने कितने पथिक अपने लक्ष्य में लीन हुए। सूफियों ने उसके ऋण को स्वीकार कर उसे 'शेख अकबर' के रूप में अपना लिया। सिकंदरिया का यह अनुपम प्रसव शामी संतों का सद्गुरु हो गया। वास्तव में प्लोटिनस ने संत-मत को जीवन-दान दिया और साक्षात्कार के मार्ग को प्रशस्त कर दिया।

फीलो, प्लोटिनस तथा डायोनीसियस के प्रयत्न से मादन-भाव को जो प्रोत्साहन मिला इससे उसके बाह्य तथा आभ्यंतर दोनों पक्ष पुष्ट हो चले थे; किंतु वह पंख पसार संसार में स्वच्छंद विहार नहीं कर सकता था। मादन-भाव के संबंध में अब तक जो कुछ निवेदन किया गया उससे इतना तो स्पष्ट ही है कि उसको सदैव

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

समझ-बूझकर आगे बढ़ना एवं फूँक फूँककर कदम रखना पड़ा—संभवतः इसी से उसमें अधिक रमणीयता भी आ गई। यहूदा के उपासकों ने उसके विध्वंस की जो उग्र चेष्टा की उससे हम भली भाँति परिचित हैं। मसीही प्रचारकों को भी वह क्षम्य न था। मसीह ने 'पिता' का राज्य पृथिवी पर स्थापित करने का संकल्प किया, चपत खाकर गाल फेरने की शिक्षा दी, जनता में प्रेम-भाव का प्रचार किया। किंतु भक्तों ने गाल फेरकर चकमा देना आरंभ किया। खाकर मुँह फेरना उचित समझा। मुँह[1] ने प्यार करना आरंभ किया और हाथ ने वध। एक मसीही[2] मर्मज्ञ ने ठीक ही कहा है कि मसीहियों का प्रेम केवल पारस्परिक था; वह भी इसलिये कि लोग समझ सकें कि उनमें प्रेम है। फलतः मसीही-संघ का ध्येय धावा और ध्वंस हो गया। संग्रह एवं शासन में उसे 'पिता का राज्य' दीख पड़ा। उसमें जो साधु थे उनकी भी दृष्टि में मसीह ही परमपिता के एकाकी पुत्र थे। इनकी लाड़ली दुलहिन उक्त संस्था ही थी। फिर यह किस प्रकार संभव था कि उसके देखते किसी अन्य को सुहाग मिले। सेवा एवं प्रेम का भाव उनमें इतना अवश्य था कि दलितों के साथ सहानुभूति प्रकट कर उनके घाव को धो या उन्हें बपतिस्मा दे दें। धर्माधिकारियों की धाक इतनी जमी थी कि उनकी व्यवस्था में किसी को आपत्ति करने का अधिकार न था। देवियों की यह[3] दशा थी कि उनकी दृष्टि ही पाप की जननी थी। हौवा की संतान पतन की प्रतिमा समझी जाती थी। धर्माधों की इस घोर व्यवस्था में संस्था[4] को ही दुल-

(१) The Religions of India (Hopkins) p. 566
(२) The Fourth Gospel (Scott) p. 115
(३) A Short History of Women p. 219
(४) देवदासियों की मर्यादा नष्ट होने पर भी शामी मतों में अलौकिक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हिन का सौभाग्य मिला था। व्यक्ति-विशेष तो लुक छिपकर ही मसीह के विरह का अनुभव कर सकता था। यहूदियों की भी यही प्रवृत्ति थी। उनकी दृष्टि में बनी-इसराईल के अतिरिक्त किसी अन्य जाति पर ईश्वर की अनुकंपा न थी। सच पूछिए तो शामी जाति सिकुड़कर 'बनी-इसराईल' की कृपा-कोर जोह रही थी। उसी का बोलबाला था।

संयोगवश अरब के कुरेश वंश के काहिन-कुल का एक दीन बालक समय के प्रभाव से एक संपन्न रमणी की चाकरी करता था। वह अपनी कुशलता एवं शील-स्वभाव के कारण उसका स्वामी बन गया। व्यापार में जो विचार हाथ आए, मक्का के मंदिर में जो दृश्य उपस्थित हुए, सत्संग में जिन मतों का परिचय मिला, उनसे उसका चित्त व्याकुल तथा विह्वल हो गया। वह सोचने लगा कि अल्लाह की सारी कृपा इब्राहीम के एक ही पुत्र की संतानों पर क्यों हुई? इसमाईल की संतानों ने उसका क्या बिगाड़ा है। धीरे धीरे उसमें जाति तथा अल्लाह की चिंता बढ़ी। अरब स्वभावतः स्वतंत्र होते हैं। मत की पराधीनता उसे खलने लगी व्यग्र हो वह अल्लाह की आराधना में तन्मय हो गया। वह नगर के बाहर चला जाता और हीरा की एकांत गुफा में अल्लाह की आराधना में घंटों पड़ा रहता। अंत में अल्लाह का साक्षात्कार

प्रणय किसी न किसी रूप में बना रहा। पाल प्रभृति मसीही प्रचारकों ने केवल संस्था या मसीही संघ पर ध्यान दिया। सूफियों के प्रभाव से जब यूरोप में प्रेम का प्रवाह उमड़ा और क्रूसेड तथा शिवालरी के कारण पुरुषों का अभाव हो गया तब यह आवश्यक हो गया कि मसीही संघ रमणियों के प्रति उदार हो। सूफियों के अलौकिक प्रेम से प्रोत्साहित हो मसीहियों ने भी मसीह और मरियम को रति का अलौकिक आलंबन चुना। धर्म का सहारा मिल जाने के कारण इन प्रेमियों की प्रतिष्ठा बढ़ी और मसीह की दुलहिनों का सम्मान हुआ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उसे एक किशोर[1] के रूप में हो ही गया। वह भावावेश में आने लगा। अल्लाह ने जिबरील के द्वारा उसके पास, व्यक्त और अव्यक्त, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में बनी-इसमाईल के लिये एक ग्रंथ भेजना आरंभ कर दिया। वह पढ़ न सका। जिबरील ने कहा—'पढ़'। बस, कुरान की रचना आरंभ हो गई।

मुहम्मद साहब (मृ० ६८६ प०) कर्मशील नबी बन गए थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि यहूदियों और मसीहियों की आसमानी किताबें अपने वास्तविक रूप में नहीं हैं। अतः उन्होंने घोषणा कर दी कि यहूदी और मसीही 'अहले किताब' होते हुए भी सच्चे मत से भ्रष्ट हो गए हैं और इब्राहीम के असली मत की अवहेलना कर अन्य मतों का प्रचार कर रहे हैं। उनका यह भी दावा था कि अल्लाह प्रत्येक जाति को, उसी की भाषा में, एक आसमानी किताब भेजता है। अरबों के लिये उसकी आसमानी किताब कुरान है जो उसके आखिरी रसूल पर नाजिल हो रही है। मुहम्मद साहब ने कुरान के प्रमाण पर अपने को रसूल सिद्ध किया और नाना देवी-देवताओं का खंडन कर अल्लाह का एकाकी शासन प्रतिष्ठित किया। अरबों को सहसा उन पर विश्वास न हुआ। उनका विरोध आरंभ हुआ। उनकी ओर से कहा गया कि मुहम्मद साहब उम्मी हैं, पढ़ना-लिखना जानते ही नहीं, फिर भला कुरान उनकी रचना किस प्रकार हो सकती है? जब लोगों ने विश्वास न किया तब उनको चुनौती दी गई कि वे एक दूसरी किताब कुरान के टक्कर की बना दें। फिर भी लोगों को संतोष न हुआ। वे मुहम्मद साहब को[2] शायर, काहिन, मजनून, अहलाम, नकूल, अजगास आदि न जाने क्या क्या कहते रहे।

(१) Studies in Islamic Mysticism p. 83
(२) Mystical Elements in Mohammad p. 79

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुहम्मद साहब को जान बचाकर मक्का से मदीना प्रस्थान करना पड़ा। विद्र के संग्राम में मुहम्मद साहब अजीब ढंग से विजयी हुए। लोगों को विश्वास हो गया कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं, और कुरान एक आसमानी किताब है। मुहम्मद साहब का पक्ष पुष्ट हो चला। अनेक वीर-धुरीण अरब उनके दल में आ गए। बहुतों से संबंध भी स्थापित कर लिया। अनेक पारिवारिक और राजनीतिक प्रश्न उठे। सबका समाधान कुरान से कर दिया गया। मुहम्मद साहब का महत्त्व बढ़ा। अल्लाह के साथ उनका भी नाम जोड़ दिया गया। उनके उठने-बैठने, चलने-फिरने, आने-जाने, खाने-पीने, कहने-सुनने आदि सभी व्यापारों पर पूरा ध्यान दिया गया। संक्षेप में, उनके मत—इसलाम—का प्रचार होने लगा।

मुहम्मद साहब की मनोवृत्तियों के विषय में अथवा उनके सूफीत्व के संबंध में विद्वानों में गहरा मतभेद है। विज्ञान के कट्टर भक्त तो उनको अपस्मार से ग्रस्त ही समझते हैं। ऐसे महानुभावों का भी अभाव नहीं जो उनको प्रच्छन्न[1] रसूल एवं चतुर नीतिज्ञ मानते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि मुहम्मद ईश्वर के मद में मस्त रहनेवाला[2] कवि था। वह अपनी तरल भावनाओं की परीक्षा नहीं कर पाता था और सदा भाव-भक्ति में मग्न रहता था। उसका अंतिम जीवन प्रौढ़ावस्था से कम सूफियाना था। यथार्थतः वह धार्मिक अथवा भक्त नीतिज्ञ था। आर्चर[3] महोदय के मत में मुहम्मद साहब मन एवं क्रिया से वास्तव में भक्त थे। अरब के निकटवर्ती प्रांतों में उस समय किसी प्रकार की योग-प्रक्रिया प्रचलित थी। कतिपय अरब उससे परिचित थे। मुहम्मद साहब

(१) The Idea of Personality in Sufism p. 4
(२) Aspects of Islam p. 187, 259, 76
(३) Mystical Elements in Mohammad p. 87-26

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

को धर्म-जिज्ञासा में उसका पता चला। फलतः उसके उपार्जन में वे लीन हुए। यद्यपि अभीष्ट भावावेश में उनके विचार तथा शब्द व्यक्त होते थे तथापि उनके दैवी होने में संदेह नहीं।

मुहम्मद साहब के जीवन का जो परिचय दिया गया है उससे स्पष्ट है कि मुहम्मद साहब के भक्त होने में कुछ संदेह नहीं। वणिक-वृत्ति से मुहम्मद साहब ने जो कुछ ज्ञान अर्जित किया, हीरा की गुहा में एकांत भाव से उसी का परिमार्जन कर अल्लाह की प्रेरणा से उसके प्रचार पर ध्यान दिया। मुहम्मद साहब का शेष जीवन एक भक्त सेनानी का जीवन हो गया। आप संचालक और संस्थापक बन गए। अल्लाह का आदेश अब व्यवस्था का काम करने लगा। मुहम्मद साहब अब अल्लाह से कहीं अधिक उसके संदेश की चिंता करने लगे। उनको किसी प्रकार अल्लाह की एकता और अपनी दूतता का प्रचार करना आवश्यक जान पड़ा। उन्होंने ईमान और दीन से कहीं अधिक इसलाम पर जोर दिया। यही कारण है कि लोग उनको सच्चा सूफी नहीं समझते और केवल एक कुशल नीतिज्ञ मानते हैं। स्वयं सूफियों का कहना है कि मुहम्मद साहब ने स्वतः गुह्यता के कारण सूफीमत का प्रचार नहीं किया; उसकी दीक्षा अली या किसी अन्य साथी को कृपा कर दे दी। सूफी इस अधिकार-भेद से पूरा लाभ उठाते और इसे अपने मत का दुर्ग समझते हैं।

मुहम्मद साहब के संबंध में अब तक जो कुछ निवेदन किया गया है उसका निष्कर्ष यह है कि मुहम्मद साहब वास्तव में सूफी नहीं थे। उनमें दार्शनिक संतों की क्षमता नहीं थी। उनकी भक्ति-भावना को देखकर हम उन्हें अभ्यासी कर्मशील भक्त कह सकते हैं। उनकी भक्ति-भावना में दास्य भाव की प्रधानता है, माधुर्य या मादन-भाव[1]

(1) Idea of Personality in Sufism p. 9

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का आमोद नहीं। मुहम्मद साहब आमोद-प्रिय जीव थे। प्रमदा पर उनकी विशेष ममता थी, फिर भी उनको स्त्री-पुरुष के सहज-संबंध में किसी सनातन सत्ता का संकेत नहीं मिलता था। अल्लाह के वे एक प्रपन्न सेवक थे, विरही या संभोगी कदापि नहीं। उनमें 'हाल' था, 'इलहाम' था, करामत थी, वासना थी; पर प्रेम और संगीत का उनमें निशान न था। संगीत से तो उन्हें चिढ़ थी। प्रेम एवं संगीत के अतिरिक्त सूफियों के प्रायः सभी लक्षण मुहम्मद साहब में थे। प्रेम का वासनात्मक भाव उनमें पर्याप्त था, अभाव उसकी अलौकिकता अथवा परिष्कार का था।

मुहम्मद साहब के इसलाम से शामी जातियों में नवीन रक्त का संचार हुआ। इसलाम के उदय के पहले ही सूफीमत के सभी अंग पुष्ट हो चले थे। उनके एकीकरण की आवश्यकता थी। मुहम्मद साहब के आंदोलन से उसको तत्कालीन लाभ तो न हो सका पर आगे चलकर अमरबेलि की भाँति उसने मुहम्मदी पादप को छा लिया और उसी के रस से अपना रस-संचार करता रहा। यहूदा के लाड़लों में उतनी शक्ति न थी जितनी अल्लाह के कट्टर उपासकों में। फलतः मादन-भाव के भावकों को अधिक सावधानी और तत्परता से काम लेना पड़ा। कुछ बात ही विचित्र है कि सीमा सौंदर्य को उगा देती है। इसलाम के सीमित क्षेत्र में मादन-भाव लहलहा उठा। युवती को परिधान मिला। परदे में आ जाने के कारण सूफीमत को इसलाम में प्रतिष्ठा मिली।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुहम्मद साहब में न तो सूफीमत का उदय हुआ और न इसलाम में उसका विकास। मुहम्मद साहब के जन्म से प्रथम ही उसका उद्भव तथा विकास हो चुका था। सुलेमान के गीत सूफी साहित्य के अनमोल रत्न हैं तो सही किंतु उनमें वह आब कहाँ जो जिज्ञासा को भी शांत कर दे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

डायोनीसियस ने भक्ति-भावना का प्रतिपादन एवं महामिलन का आभास तो दिया, पर उसमें वह आलोक कहाँ जो द्रष्टा और दृश्य को दृष्टि में लय कर आकाश बना दे! यहूदी और मसीही उल्लास को इतना न तपा सके कि वह सच्चा सुवर्ण बनता। इस-लाम के परितः व्यवधान में सूफीमत को जो पुटपाक मिला उसी में मादन-भाव का सच्चा प्रेम-रसायन तैयार हुआ। मादन-भाव के इसी परिपाक में सूफीमत को दार्शनिक रूप मिला। सूफियों की संचित सामग्री को लेकर इसलाम ने उसको किस प्रकार तसव्वुफ का रूप दिया, इसका निदर्शन हम अगले प्रकरण में करेंगे। यहाँ तो हमें इतना ही कह कर संतोष करना है कि मुहम्मद साहब ने भावावेश में जो कुछ कहा वह सर्वथा सूफियों के प्रतिकूल न था; उसमें उनके लिये भी कुछ जगह थी। सूफियों ने उन्हीं स्थलों को चुना और उनके आधार पर समूचे कुरान पर अपना अधिकार जमा लिया। उनके शील, संतोष, त्याग आदि सद्गुणों ने उनकी सहायता की और वे शाश्वत शाह बन गए।

(३)

मादन-भाव ने किस प्रकार मत का रूप धारण कर लिया, इसका कुछ निदर्शन गत प्रकरण में हो गया। अब हमें यह देखना है कि किस प्रकार उसको इसलाम में प्रतिष्ठा मिली और वह सूफीमत के रूप में विख्यात हुआ। सूफीमत का वास्तव में इसलाम से वही संबंध है जो किसी दर्शन का किसी मार्ग से होता है। सूफी-मत भी इसलाम की तरह अपनी प्राचीनता का पक्षपाती है। इस-लाम की भाँति ही उसके प्रसार में भी कुरान का पूरा हाथ रहा है। कुछ लोगों का तो कहना ही है कि सूफी शब्द की व्युत्पत्ति मदीने के उस चबूतरे[1] से है जिस पर बहुत से संत आकर बैठते

(१) Studies in Tasawarif p. 121

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

थे और मसजिद के दान से अपना जीवन-निर्वाह करते थे। कुछ भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि हीरा की गुहा में मुहम्मद साहब का जो दर्शन हमें मिला वह सर्वथा सूफियाना था। कुरान उसी अभ्यास का फल था। समझ में नहीं आता कि मुहम्मद साहब ने उस मार्ग की उचित व्यवस्था क्यों नहीं की, जिसके प्रसाद से उनको अल्लाह के अंतिम और प्रिय रसूल होने की सनद मिली। कुरान में अल्लाह के जिस स्वरूप का परिचय दिया गया उसकी जिस शक्ति, अनुकंपा और क्षमा का प्रस्ताव किया गया, उसका समीक्षण अन्यत्र किया जायगा। यहाँ तो केवल यह कहना है कि कुरान में कतिपय स्थल इस ढंग के अवश्य हैं जिनके आधार पर शब्द-शक्ति की कृपा से सूफीमत का प्रतिपादन इसलाम के अंतर्गत भली भाँति किया जा सकता है। भक्ति में, चाहे उसकी भावना किसी प्रकार की क्यों न हो, उपास्य की सन्निकटता अनिवार्य होती है। प्रपन्न मुहम्मद जब कभी सेना, शासन, संग्राम आदि से शिथिल हो किसी चिंतन के उपरांत अल्लाह की शरण लेते और उसके आलोक का आभास देते तब उसमें कुछ न कुछ वह झलक आ ही जाती थी, जो न जाने कितने दिनों से अरब के पथिकों को गुमराह होने से बचाती, मार्ग दिखाती और त्यागी यतियों की पर्णकुटी की शोभा बढ़ाती थी। अल्लाह की व्यक्तिगत सत्ता का स्वर्गस्थ विधान संग्राम में सहायक तो था किंतु दलित हृदयों का उद्धार, उनका परितः परिमार्जन, उसका सामीप्य ही कर सकता था। यदि कुरान के अवतरण का विधान—अल्लाह, जिबरील, मुहम्मद, जनता—बना रहता तो सूफी महामिलन का स्वप्न न देख पाते। सूफियों को तो प्रियतम के गले का हार भी दुःखद था, फिर भला वे किसी मध्यस्थ को कब तक कबूल[1] करते। निदान उनको अपने मत के प्रतिपादन

(१) "ख़ुदा उस वक्त (कयामत के दिन) कहेगा—ऐ मुहम्मद! जिनको तुमने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के लिये कुरान के पदों का अभीष्ट अर्थ लगा मुहम्मद साहब को 'महबूब' और 'नूर' बनाना पड़ा। मुहम्मद साहब के सत्कार से उनके बहुत से अंतराय दूर हुए और सूफी इसलामी जामे में अपने मत का प्रचार करने लगे। धीरे धीरे इसलाम में उनको शाश्वत पद मिल गया और तसव्वुफ इसलाम का[1] दर्शन हो गया।

इसलाम की दीक्षा में यदि अल्लाह अनन्य है तो मुहम्मद उसका अंतिम दूत। मुहम्मद साहब ने अपना नाम जो अल्लाह के साथ जोड़ दिया उससे इसलाम क्रूर और संकीर्ण हो गया। बेचारे सूफियों को भी इसलाम की रक्षा के लिये मुहम्मद साहब को बहुत कुछ सिद्ध करना पड़ा। मुसलिम संसार में अल्लाह और कुरान के अनंतर मुहम्मद और हदीस का स्थान है। वास्तव में मुहम्मद साहब ने जो कुछ आवेश की दशा में कहा वह कुरान और जो कुछ होश की हालत में कहा वह हदीस के नाम से ख्यात हुआ। आवेश देवात्मक होने के कारण प्रधान और हदीस सामान्य होने के कारण गौण है। हदीस के साथ ही सुन्ना का भी महत्त्व इसलाम को मान्य है। सुन्ना में रसूल के क्रिया-कलापों का विधान है। इसलाम में विधि-निषेध, निमित्त-नित्य, काम्य आदि कर्मों की मीमांसा सुन्ना के आधार पर होती रही। इस प्रकार संतों के सामने कुरान के साथ ही हदीस एवं

पेश किया वे तुम्हें जानते हैं, मुझे नहीं जानते। ये लोग (सूफी) मुझे जानते हैं, तुम्हें नहीं जानते"। जायसी-ग्रंथावली, भूमिका पृ० १६८।

(१) इसलाम का वास्तव में कोई निजी दर्शन नहीं है। शामी मतों में आसमानी किताबों पर इतना जोर दिया गया कि उनमें दर्शन के लिये जगह न रही और बुद्धि पाप की जननी मानी गई। पर आर्यों के प्रभाव से इसलाम में चिंतन आरंभ हो गया। मुसलिम फिलासफ को यूनान का प्रसाद समझते हैं। तसव्वुफ से ही मुसलिम मनीषियों को संतोष हुआ और उसी में इसलाम की रक्षा भी दिखाई पड़ी।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सुन्ना का भी प्रश्न था। धार्मिक ग्रंथों में कुरान क्षेपकों से बहुत ही सुरक्षित है। उसमान (मृ० ७१२) ने चाहे उसमें कुछ परिवर्त्तन किया हो, पर उनके अनंतर कुरान का रूप स्थिर और व्यवस्थित हो गया। परंतु हदीस और सुन्ना, सुगम होगा यदि दोनों ही को हदीस कहें, बहुत दिनों तक अस्थिर रहे। संप्रदायों की मन-चाही व्याख्या के लिये हदीस चिंतामणि या कल्पलता का काम करते आ रहे हैं। उसमान के वध के कारण इसलाम में जो विभेद हुए उनके प्रतिपादन के लिये हदीस ही उपयुक्त थे; क्योंकि कुरान का रूप उस समय तक स्थिर हो गया था और उसमें कुछ हेरफेर करना असंभव था। पक्ष के पुष्टीकरण एवं विपक्ष के निराकरण के लिये हदीस का व्यापार चल पड़ा। पक्षापक्ष की खींच-तान, वादियों की छीन-झपट में हदीस का विस्तार बहुत दिनों तक होता रहा। संत भी सजग थे: उन्होंने भी परिस्थिति से लाभ उठा अनेक हदीस[1] गढ़ डाले। जब इसलाम के कट्टर अनुयायी काम, क्रोध, लोभ आदि दुष्ट वृत्तियों के लिये अनृत[2] हदीस गढ़ रहे थे, पाषंड का प्रचार कर रहे थे, तब सारग्राही संत आत्म-रक्षा, जीवोद्धार एवं भगवद्भक्ति के लिये यदि इस क्षेत्र में उतर पड़े तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वह भी उस समय जब उनको बहुत कुछ अर्थ-प्रवर्तन करना था, हदीसों का दुष्ट निर्माण नहीं।

प्रायः यह देखा जाता है कि जन-समाज भावों की उपेक्षा कर क्रिया के अनुसरण में अधिक तत्परता दिखाता है। इसलाम इसका अपवाद नहीं। मुहम्मद साहब अरबों के उत्थान में मग्न थे। अरबों[3] के लिये अरबी में कुरान उतर रही थी। किंतु उनके

---

(१) The Mystics of Islam p. 53

(२) The Traditions of Islam p. 13

(३) सुरा १२ २, १३. ३७, ३६. २६, ४१. २।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अनुयायियों ने उनके भावों पर ध्यान नहीं दिया। उनके सामने सेनानी मुहम्मद का वह रूप नाच रहा था जो इसलाम के प्रसार के लिये संग्राम में निरत था, संहार में मग्न था, संग्रह में लगा था, ध्वंस और धावा को ध्येय समझता था। चट उन्होंने उसी का तांडव आरंभ किया। मुहम्मद के एकदेशीय संदेश को, अरबी कुरान और अरबी दीक्षा के आधार पर विश्वव्यापक बनाने की उग्र चेष्टा आरंभ हुई। भाग्यवश उमर (मृ० ७००) सरीखा पटु, विचक्षण, त्यागी, कुशल वीर नीतिज्ञ मिला। उमर की छत्रछाया में इसलाम को जो गौरव मिला था वह सहसा नष्ट हो गया। उसमान उसकी रक्षा न कर सके। उमर के प्रभुत्व से मिस्र तथा पारस जैसे सभ्य और संपन्न देश इसलाम के शासन में आ गए। शाम भी अछूता न बचा। इसलाम को सँभलकर काम करना पड़ा। इसलाम विकट परिस्थिति में पड़ गया। एक ओर तो जो लोग स्वर्ग के लोभ अथवा स्वर्ण की लालसा से लड़ रहे थे उन्हें संभोग की वासना सताने लगी, दूसरी ओर जो भद्र मुसलिम बन गए थे उनकी प्रतिभा इसलाम का मर्म समझना चाहती थी। बुद्धि विभेद की जननी और विज्ञान की माता है। लोभवश इसलाम में अरब और अरबेतर का प्रश्न उठा। शासन और साम्राज्य के लिये मुसलिम आपस में भिड़ गए। जिज्ञासा ने इसलाम, ईमान एवं दीन का प्रश्न खड़ा किया। मुहम्मद साहब ने इसलाम पर विशेष जोर दिया था, पर ईमान और दीन के संबंध में प्रायः वे मौन ही रह गए थे। कम से कम कुरान में इनका निरूपण[1] नहीं किया गया था।

इसलाम को यहूदी, मसीही, पारसी आदि अनेक मतों को पचाना था। उसमें धर्म-जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इसलाम के सामने

(१) The Muslim Creed p. 3

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जो प्रश्न आए उनका समन्वय वह न कर सका। पारस को जीतकर इसलाम स्वयं पारसी बनने लगा। अरब मुहम्मद साहब को अरब नेता मानकर उनके संघ में शामिल हो गए थे और उनकी सफलता और प्रतिभा के कारण उनको रसूल भी मान बैठे थे, पर ईरानियों की भाँति मुहम्मद साहब को वे कभी उस पद पर प्रतिष्ठित नहीं कर सकते थे जिससे केवल उन्हीं के वंशज इसलाम के शासक बनें। अस्तु, अरबों ने अली (मृ० ७१७) की अवहेलना कर बकर को खलीफा चुना। पुत्री के पति से पत्नी के पिता को अधिक महत्त्व दिया। फातिमा और आयशा का विरोध चल पड़ा। अली शिष्ट, सुशील, कवि, व्याख्याता, वीर एवं उदात्त थे। कूटनीति की कुत्सित चालों से उनका मस्तिष्क मुक्त था। मुसलिम संसार में अली सा सुशील वीर उत्पन्न न हुआ। उनमें भक्ति-भावना का पूरा प्रसार था। प्रवाद है कि मुहम्मद साहब ने गुह्य विद्या का प्रकाशन केवल अली से किया था। जो कुछ हो, अली अपनी उदात्तवृत्तियों के कारण इसलाम का संचालन बहुत दिन तक न कर सके। उनके वध के अनंतर उमय्या वंश का शासन (सं० ७१८-८०६) आरंभ हुआ। कुछ ही दिनों के बाद (सं० ७३७) करबला के क्षेत्र में उनकी प्यारी संतानों की जो दुर्दशा की गई उसका स्मरण कर आज भी चित्त व्याकुल हो जाता है और शीया तो उनके मातम में छाती पीटकर मर से जाते हैं। उनके विलाप को सुनकर हृदय दहल उठता है और करबला के हत्याकांड को इसलाम का कलंक समझने को विवश हो जाता है।

इसलाम के नाम पर जो मुसलमानों में पारस्परिक संग्राम छिड़ गया था उसमें सांख्य का उदय होना अनिवार्य था। इसलाम के लिये मर मिटनेवाले व्यक्तियों की अब भी कमी नहीं थी। हाँ, उनको अपने दल में लाने के लिये अपने पक्ष का पुष्टीकरण इसलाम

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के आधार पर अवश्य करना था। जनता की घोषणा थी कि वह इसलाम का साथ देगी, किसी व्यक्तिविशेष से उसका कुछ संबंध नहीं। अतएव अपने अपने मत के अनुसार इसलाम, ईमान और दीन की व्याख्या अनिवार्य हो गई। इसलाम में नाना संप्रदाय चल पड़े। सुन्नी और शीया का विरोध आरंभ हुआ। जो तटस्थ रह गए उनको खारिजी की उपाधि मिली।

मुसलिम तांडव ने मसीही लास्य को दबाकर जिस आवर्त्त को जन्म दिया उसमें किसी के स्वरूप का ठीक ठीक पता लगाना एक दुस्तर काम है। फिर भी आसानी के साथ कहा जा सकता है कि संतमत के योग्य यह वातावरण इसी अंश में था कि इसमें कुछ निर्वेद का उदय हो जाता था। उद्भव के प्रकरण में हम देख चुके हैं कि युद्ध में प्राचीन नबियों का काफी हाथ रहता था। इस समय उनका हाथ अपनी कला कहाँ तक दिखाता रहा, इससे हमारा मुख्य प्रयोजन नहीं। क्योंकि उनका यह काम भक्तों का नहीं, पंडा-पुरोहितों का कर्म समझा जायगा। साथ ही हमको इस समय उन महानुभावों का भी दर्शन नहीं मिल सकता जो संगीत एवं प्रेम का प्रचार करते हैं। मनोविज्ञान की तो यह एक सामान्य बात है कि संग्राम शांति चाहता है, उत्साह निर्वेद में समाप्त होता है। रण में जो भीषण रक्तपात और करुण एवं वीभत्स दृश्य सामने आते हैं वे उदार पुरुषों को किसी समाज में नहीं रहने देते, बल्कि उनको संसार से विरक्त कर कहीं एकांत-सेवन करने के लिये विवश करते हैं। यही कारण है कि हमें जिन[1] त्यागी, संतोषी, उदार और भक्त व्यक्तियों का कुरान में दर्शन होता है उनका भी इस युग में पर्याप्त पता नहीं चलता। इस वातावरण में शांत तपस्वी व्यक्तियों का एकांत दर्शन ही स्वाभाविक है।

---

(१) तसव्वुफ इसलाम पृ० १२।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जिनको संसार की क्षणिक क्षणदा पसंद नहीं उनको यति-मार्ग का अनुसरण करना पड़ा।

उमय्या-वंश का राज्य काम, क्रोध, लोभ आदि का राज्य था। इसमें धर्म का ध्यान न था। उसकी पद्धति मुहम्मद साहब से पूर्व की अरब-पद्धति थी। पारस से उसका विरोध बढ़ता ही गया। अली के प्रतिकूल आयशा ने जो योग दिया था, करबला के क्षेत्र में जो हत्याकांड हुए थे उनका घोर दुष्परिणाम इसलाम को बराबर भोगना ही पड़ा। अली के विरोध के कारण उक्त वंश अपने पक्ष में प्रमाणों[1] को गढ़ता और उनके पक्ष के प्रमाणों को नष्ट करता रहा। कुछ समय में इसलाम के अंतर्गत इतने विभेद उत्पन्न हो गए कि उसमें अनेक पंथ चल पड़े। सीरिया में ग्रीक-दर्शन का प्रचार मसीही मत के आधार पर चल रहा था। पारस अपनी संस्कृति के फेर में अलग पड़ा था। सिंध में इसलाम का डेरा पड़ गया था। संक्षेप में, इसलाम में इतने मतों का प्रवेश हो गया था कि उनको एक सूत्र में बाँध रखना अत्यंत कठिन था। वह भी उस समय जब शासक भोग-विलास के दास हो गए थे। उमय्या-वंश के शासन के पहले ही जो जिज्ञासा चल पड़ी थी वह इतनी प्रबल हो गई कि इसलाम में एक ऐसे दल का उदय हो गया जो सर्वथा बुद्धिवादी था। प्रवाद है कि उक्त दल का नामकरण बसरा के हसन ने मोतजिल किया था। सूफीमत के समीक्षक हसन का नाम नहीं भूलते। हसन उस समय की जिज्ञासा का केंद्र था। उसमें मादन-भाव का प्रसार तो न हो सका, किंतु उसके प्रभाव से संत-मत को प्रोत्साहन मिला और सूफी मत के अनेक अंग पुष्ट हो गए। प्रसिद्ध है कि एक रमणी[2] ने हसन को

(१) Tradition of Islam p. 47
(२) Saints of Islam p. 22

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस बात का उपालंभ दिया था कि यदि वह अल्लाह के इश्क में उसी तरह मग्न रहता जिस तरह वह प्रमदा अपने प्रिय के प्रेम में मग्न थी तो उसे उसके नग्न अंग कदापि गोचर नहीं होते। हसन (मृ० ७८५) प्रेम-प्रसाद का वितरण न कर सका। वह उदार, शांत और तपस्वी था। उसकी दृष्टि में उदारता[1] का एक कण भी प्रार्थना तथा उपवास से सहस्र गुण अधिक महत्त्व रखता है। हसन प्रेम का पुजारी नहीं, सद्भावों का विधायक था।

प्रेम की अवहेलना अधिक दिनों तक न हो सकी। इसलाम में उसकी प्रतिमा का उदय हुआ। सूफी-साहित्य में राबिया का नाम अमर है। राबिया (मृ० ८०९) की प्रेम-प्रक्रिया पर विचार करने के पूर्व ही हमको यह जान लेना परम आवश्यक है कि अरबों में भी अन्य जातियों की तरह मनुष्य का विवाह किसी जिन, देव या अलख से हो जाता था। इस धारणा[2] का निर्वाह अभी तक अरब में हो रहा है। राबिया एक दासी थी। वह अपने को अल्लाह की पत्नी समझती थी। उसके विषय में अत्तार[3] का प्रवचन है कि जब एक प्रमदा परमेश्वर के मार्ग पर पुरुष की भाँति अग्रसर होती है तब वह स्त्री नहीं। यदि स्त्रियाँ उसी की तरह भक्त होतीं तो उन्हें कौन कोस सकता था! राबिया परमात्मा की प्रिय दुलहिन थी। वह कहती है[4]—"हे नाथ! तारे चमक रहे हैं, लोगों की आँखें मुँद चुकी हैं, सम्राटों ने अपने द्वार बंद कर लिए हैं, प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रिया के साथ एकांत सेवन कर रहा है, और मैं यहाँ

(१) J. R. A. Society 1906 p. 305
(२) The Religious Life and attitude in Islam p. 143-148.
(३) Rabia the Mystic p. 4.
(४) ,, ,, p. 27.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अकेली आपके साथ हूँ।" उसका निर्देश[1] है-"हे नाथ! मैं आपको द्विधा प्रेम करती हूँ। एक तो यह मेरा स्वार्थ है कि मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्य की कामना नहीं करती, दूसरे यह मेरा परमार्थ है कि आप मेरे परदे को मेरी आँखों के सामने से हटा देते हैं ताकि मैं आपका साक्षात्कार कर आपकी सुरति में निमग्न हूँ। किसी भी दशा में इसका श्रेय मुझे नहीं मिल सकता। यह तो आपकी कृपा-कोर का प्रसाद है।" मुसलिम राबिया को मुहम्मद साहब का भय था। उसने उनसे प्रार्थना की[2]—"हे रसूल! भला ऐसा कौन प्राणी होगा जिसे आप प्रिय न हों। पर मेरी तो दशा ही कुछ और है। मेरे हृदय में परमेश्वर का इतना प्रसार हो गया है कि उसमें उसके अतिरिक्त किसी अन्य के लिये स्थान ही नहीं है।" प्रेम का पुनीत परिचय, भावना का दिव्य दर्शन, मुहम्मद की मधुर उपेक्षा, कामना का कलित कल्लोल, वेदना का विपुल विलास आदि सभी गुण राबिया के रोम रोम से प्रेम का आर्त्तनाद कर रहे हैं। उसका जीवन परमेश्वर के प्रेम से आप्लावित था। सचमुच राबिया माधुर्य-भाव की जीती-जागती प्रतिमा थी। वह इस लोक में रहती और उस लोक का परिचय देती थी। मैक्डानल्ड[3] महोदय तो मादन-भाव का सारा श्रेय राबिया, अथवा स्त्री-जाति को ही देना संगत समझते हैं। राबिया के अतिरिक्त बहुत सी अन्य देवियों ने महामिलन के स्वप्न में परम प्रियतम का विरह जगाया था और इसलाम के क्रूर शासकों का दर्प देखा था। वल्जा के हाथ-पैर काटे गए, पर उसको इसका दुःख न रहा। भविष्य की विभूति ने उसे घोर संताप से विमुख कर दिया। वह परम प्रेम में मत्त रही।

---

(१) A Literary History of the Arabs p. 234.
(२) ,, ,, ,, p. 234.
(३) Muslim Theology p. 173.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मादन-भाव के जिस विभव का दर्शन राबिया तथा उसकी सखियों में मिला उसका मूल-स्रोत वस्तुतः वासनात्मक है। बाय-बिल[1] में जिस वेदना का विधान किया गया था उसका विमल विलास राबिया में हुआ। परंतु उसके निरूपण का जो श्रम प्लेटो तथा प्लोटिनस प्रभृति पंडितों ने किया था उसकी प्रतिष्ठा अभी इसलाम में न हो सकी। इसलाम में प्रेम का प्रतिपादन नवीन पद्धति पर करना परम आवश्यक प्रतीत होने लगा। शासकों के भोग-विलास से प्रेम को प्रोत्साहन मिला। उसका कल निनाद स्फुट हुआ। उमय्या-वंश के बादल को विच्छिन्न कर पारस का सितारा चमका। अब्बासियों के शासन में पारस को जो प्रतिष्ठा मिली उसका इसलाम पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि पद पद में इसी की आभा फूटने लगी। संस्कृति की दृष्टि से अरब पारस के विजयी भृत्य बन गए। उनको अध्यात्म का गूढ़ विवेचन नहीं भाता था, पर किसी मत में मीन-मेष कर लेना वे जानते थे। पारस के संपर्क में तो अरब बहुत पहले से थे, अब उसके बीच में बसकर उसे इसलाम की दीक्षा देने लगे थे। उनका एकमात्र धार्मिक अस्त्र कुरान था। हदीस का उपयोग भी कर लिया जाता था। पारस काफी बुद्धि-वैभव देख चुका था। अब्बासियों की कृपा से बगदाद विद्या का केंद्र बन गया। न जाने कितने ग्रंथों के अनुवाद अरबी में किए गए। ग्रीस एवं भारत के मनीषी मर्मज्ञ बगदाद में आमंत्रित हुए। बरामका[2] पहले बौद्ध थे। उनके मंत्रित्व में बगदाद ने जो विद्या-प्रचार किया वह इस-लाम की नस नस में भिन गया। अनूदित ग्रंथों एवं अन्य विद्या-व्यापारों का समीक्षण न कर हम इतना कह देना अलं समझते हैं

---

(१) Joce I. 8.

(२) अरब और भारत के संबंध पृ० ९४

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कि यह इसलाम का स्वर्णयुग था। इसमें भिन्न भिन्न मतों, दर्शनों, कलाओं, विचारों आदि का विनिमय व्यापक रूप से हो रहा था; बुद्धि-व्यायाम परित: चल रहा था और पारस की आर्य-संस्कृति इसलाम की रग रग में दौड़ने की चेष्टा कर रही थी। संक्षेपत: यह इसलाम में चिंतन का युग था। इसमें कुरान के कोरे प्रमाण और हदीस की सच्ची गवाही मात्र से इसलाम का सिक्का नहीं चल सकता था। उसको सहज जिज्ञासा को शांत करना था।

पारस इसलाम का सदा से एक अजीब उपनिवेश रहा है। इसलाम में पारसीकों का चाहे जितना योग रहा हो, पर इसलाम को कबूल कर पारसीकों ने एक नवीन मत धारण किया। इसलाम में शायद ही कोई ऐसा धार्मिक आंदोलन छिड़ा हो जिसका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पारस से कुछ भी संबंध न रहा हो। तसव्वुफ तो बहुत कुछ पारस का प्रसाद है। सूफी मत को व्यवस्थित रूप देने में इसलाम के उन संप्रदायों ने विशेष सहायता दी जो कुरान, हदीस, ईमान, कर्म, भाग्य, न्याय आदि प्रसंगों पर विवाद करते और अपने अपने मतों का अलग अलग निरूपण करते थे। कुरान के विषय में सबसे विकट प्रश्न उसके स्वरूप के संबंध में था। मुहम्मद साहब के पहले वह कहाँ और किस रूप में था। जो लोग कुरान का उपहास अथवा उसका अनुकरण कर एक दूसरा कुरान रच रहे थे उनको दंड दिया गया और कुरान की प्रतिष्ठा भली भाँति स्थापित हो गई। अपने पक्ष के प्रतिपादन एवं विपक्ष के निराकरण के लिये कुरान प्रमाण तो कभी का बन चुका था, अब धर्म-संकट से बचने और आत्म-तुष्टि के लिये भी उसका प्रमाण अनिवार्य हो गया। उसमान के समय में उसको जो रूप मिल गया था उसमें किसी प्रकार परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता था, अत: उसकी शब्द-शक्ति पर ध्यान दिया गया। अभिधा का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्थान लक्षणा एवं व्यंजना को मिल गया। हदीस की सीमा भी अब परिमित हो चली थी। उसको लेकर रूढ़ि और विवेक, नक्ल और अक्ल का झगड़ा खड़ा हो गया। कर्त्ता और कर्म, भाग्य एवं व्यक्ति का विवेचन भी आरंभ हो गया। न्याय की जिज्ञासा प्रतिदिन बढ़ती गई। आज्ञा और प्रसाद में विवाद छिड़ा। सारांशत: इसलाम के नाना संप्रदाय अपने मत के निरूपण में लगे। मोतजिल संप्रदाय ने सूफियों के अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया। उसने कुरान की अद्भुत व्याख्या, न्याय का उचित प्रतिपादन, तौहीद का वास्तविक विवेचन करने की जो चेष्टा की उसमें चाहे उसको सफलता भले ही न मिली हो; किंतु उसने इसलाम को झकझोरकर सतर्क कर दिया। मुर्जी दल उसको रोक न सका। खारिजी भी तटस्थ न रह सके। कादिरी भी प्रयत्नशील हुए। सूफियों की मधुकरी वृत्ति ख्यात ही है। वे ज्ञानार्जन में मग्न रहे। इस युग के प्रमुख सूफी इब्राहीम, दाऊदताई तथा सकती कहे जा सकते हैं। इब्राहीम में मुल्लाओं की उपेक्षा तथा कर्मकांडों की अवहेलना थी। परमेश्वर के आज्ञा-पालन और संसार की सार-हीनता पर वे विशेष जोर देते थे। दाऊद कहा करते थे[1]— "मनुष्यों से उसी तरह दूर भागो, जिस तरह शेर से दूर भागते हो। संसार का व्रत रहो और निधन का पारण करो।" स्पष्टत: इन सज्जनों में अनुराग से कहीं अधिक विराग का बोलबाला है। अभी संग्राम-जनित क्षोभ का उपशमन और परमेश्वर की आज्ञा का पालन ही साधुओं के लिये स्वाभाविक था। प्राचीन संस्कार इसलाम से डर एकांत-सेवन में ही अपना हित समझते थे। प्रेम के संबंध में इतना जान लेना उचित है कि अब तुर्क और मग बच्चे

(१) J. R. A. Society 1906 p. 347.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

माशूक[1] बन चले थे। उसके श्लील एवं अश्लील रूप का व्यापार बढ़ रहा था। सूफी शब्द[2] प्रयोग में आ गया था और दमिश्क में मठ भी स्थापित हो गया था।

मंसूर (मृ० ८३१) तथा हारूँ रशीद की उत्कट जिज्ञासा ने जो वातावरण उत्पन्न किया वह इसलाम की परिधि को पार कर चुका था। संस्कृतियों के संग्राम से विभेद मंगलदायक हो गया। अबू हनीफा ने धर्मशास्त्र का आलोचन किया। दमिश्क के जान ने मसीही दर्शन का अनुशीलन किया, और भक्ति-भावना पर उचित प्रकाश डाला। भारत में सिंध के मुसलमान भी मौन न रहे। मुल्तान[3] विद्या तथा तसव्वुफ का केंद्र बन रहा था। कतिपय बौद्ध भी इसलाम स्वीकार कर चुके थे। सरन द्वीप में आगंतुक मुसलमानों पर बेकौर (वीर-कौल) का प्रभाव पड़ रहा था। अरब और भारत के संयोग से सोमरा और बेसर नायक संकर जातियाँ उत्पन्न हो चुकी थीं। संक्षेप में, इसलाम चारों ओर से रस खींच रहा था।

भाग्य या दुर्भाग्यवश मामून (मृ० ८९०) सा दृढ़ और आग्रही व्यक्ति इसलाम का शासक बना। मुहम्मद साहब ने मुसलिम संघ एवं साम्राज्य के विभेद पर ध्यान नहीं दिया था। उनका प्रतिनिधि साम्राज्य तथा संघ दोनों का संचालक था। मामून संसार के उन अधिपतियों में था जो धर्म पर भी शासन करते हैं। उसने घोषित कर दिया कि कुरान की शाश्वत सत्ता अल्लाह की अनन्यता के प्रतिकूल है; जो लोग उसको नित्य मानेंगे उन्हें दंड भोगना पड़ेगा। मामून को इस घोषणा की प्रेरणा मोतजिलों की ओर से मिली थी। मामून को मतों की मीमांसा पसंद थी।

---

(१) शैख़ुल् अजम च० भा० पृ० ८७

(२) The Mystics of Islam p. 3.

(३) अरब और भारत के संबंध पृ० ३१२

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वह सारग्राही दबंग शासक था। उसके व्यापक और कठोर हस्त-क्षेप ने इसलाम को क्षुब्ध कर दिया। अली के उपासकों को उत्कर्ष मिला। मेहदी और इमाम के विषय में जो विवाद चल रहे थे उनका निदर्शन अन्यत्र किया जायगा। यहाँ आपाततः यह विचारना है कि प्रस्तुत वातावरण में सूफीमत की क्या दशा थी। सूफीमत के अभ्युत्थान में मारूफ करखी का विशेष हाथ था। उसने तत्त्व-बोध एवं अर्थ-त्याग को तसव्वुफ की उपाधि दी। प्रेम और मधु की उद्भावना की। उसकी दृष्टि में प्रेम व्यक्ति-विशेष की शिक्षा नहीं, परमेश्वर का प्रसाद है। करखी ने त्याग, तत्त्व एवं प्रेम का उद्बोधन कर सूफीमत के प्रजात्मक रूप का निर्देश किया। उधर सीरिया के अबू सुलेमान दारानी ने हृदय को परमेश्वर की प्रतिमा का आदर्श तथा देहज वस्तुओं को उसका आच्छादक कहा। उसने ज्ञान का गौरव व्याख्या से कहीं अधिक मौन में समझा। उसके विचार में जब किसी पदार्थ के अभाव में जी कलपता है तब आत्मा हँसती है; क्योंकि यही उसका वास्तविक लाभ है। करखी में चिंतन एवं दारानी में तप की प्रधानता है। सचमुच करखी में कतिपय उन नवीन तथ्यों का भान होता है जो आज भी सूफी मत में मान्य हैं और जिनका समाधान इसलाम या मुहम्मदी मत नहीं कर सकता। उनको हृदयंगम करने के लिये उन स्रोतों का पता लगाना पड़ेगा जो इसलाम को सींच रहे थे। कहना न होगा कि बसरा और बगदाद ही इस समय सूफी मत के केंद्र रहे जो आर्य-संस्कृति से सर्वथा अभिषिक्त थे।

मामून के निधन के उपरांत तर्क का पक्ष दुर्बल पड़ गया। जनता भाव की भूखी होती है, तर्क से उसका पेट नहीं भरता। उसको किसी ठोस पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है। वह सदा-चार का अनुकरण करती है, ज्ञान का अनुशीलन नहीं। अहमद

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इब्न हंबल (मृ० ९१२) मामून के कृत्यों का कट्टर विरोधी था। उसको उचित अवसर मिल गया। वह अपनी सज्जनता, श्रद्धा एवं तप के कारण जनता में पूजनीय हो गया। मोतजिलों का तर्क जनता के काम का न था। उनकी बातों पर मर्मज्ञ मनीषी ही ध्यान दे सकते थे। हंबल ने उनके खंडन का प्रयत्न किया। हंबल तथा इसलाम के अन्य आचार्य उसको कुरान, हदीस एवं सदाचार के भीतर घेर रहे थे; इधर हृदय के व्यापारी उसको व्यापक बनाने में मग्न थे। विवाद इतना बढ़ गया था कि बुद्धि की सर्वथा अवहेलना असंभव थी। प्रेम इतना पक्व हो गया था कि उसका आस्वादन अनिवार्य था। इसी परिस्थिति में मिस्र का जूलनून आगे बढ़ा। राबिया ने जिस प्रेम का आनंद उठाया था जूलनून ने उसका निदर्शन किया। इल्म और मारिफ[1], ज्ञान और प्रज्ञान का रहस्योद्घाटन कर जूलनून ने प्रेम को प्रज्ञात्मक रूप दिया। उसकी दृष्टि में मारिफत का संबंध खुदा की मुहब्बत से था। उसके पहले हफी ने परमेश्वर को हबीब कहा था, किंतु उसने उसका निरूपण नहीं किया। इसलाम में तौहीद का राग अलापा जाता था, पर इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता था कि अल्लाह की अनन्यता तभी पक्की हो सकती है जब उसके अतिरिक्त कुछ भी शेष न रहे, केवल अन्य देवता के निषेध से नहीं। मोतजिलों ने इस क्षेत्र में मार्गप्रदर्शक का काम किया था, किंतु उनका अधिकतर ध्यान कुरान की अनित्यता तक ही रह गया था। अस्तु, जूलनून ने तौहीद का प्रकाशन कर इसलाम को प्रेम की ओर अग्रसर किया और बायजीद ने अपने को धन्य कह अनुभवाद्वैत का आभास दिया। जूलनून (मृ० ९१६) का कहना है कि[2] परमेश्वर का ज्ञान हमें पर-

---

(१) The Idea of Personality in Sufiism p. 9

(२) J. R. A. Society 1906 p. 310.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मेश्वर से प्राप्त होता है। उसके विषय में हम जो कुछ कल्पना करते हैं वह उसके विपरीत होता है। सर्व-समर्पण कर जो परमेश्वर को वरता है वही जन है, क्योंकि परमेश्वर भी उसी को चुने रहता है। जूलनून ने वज्द, समा, तौहीद, रसायन, तंत्र आदि पर भी प्रकाश डाल प्रेम को प्रतीक सिद्ध कर दिया। फलतः उसे मलामती[1] जिंदीक[2] की उपाधि, कुत्व की पदवी तथा कारावास का दंड मिला।

जूलनून के अतिरिक्त और भी अनेक सूफी इस काल में इधर-उधर अपनी छटा दिखा रहे थे। सूफियों की तालिका उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं। केवल उन सूफियों का परिचय प्राप्त करना चाहिए जिनका सूफी मत के इतिहास में कुछ विशेष स्थान है। यह देखकर चित्त प्रसन्न होता है कि इस समय बसरा के मुहासिबी ने रिजा पर जोर दे एक सूफी-संप्रदाय का प्रवर्त्तन किया जो उसी के नाम से ख्यात हुआ। यजीद (मृ० ८३१) शुद्ध पारसी संतान था। उसका पिता जरथुष्ट्र का उपासक था। उसके योग से सूफी मत में अद्वैत का अनुष्ठान चला। उसने परमात्मा को अंतर्यामी सिद्ध किया और कण कण में उसी का विभव देखा। आत्म-दर्शन में उसने परमेश्वर का साक्षात्कार किया। वह जीवात्मा को परमात्मा से भिन्न नहीं समझता था। उसका प्रवचन है कि परमात्मा के प्रति जीवात्मा के प्रेम से जीवात्मा के प्रति परमात्मा का प्रेम पुराना है। जीव अज्ञानवश समझता है कि वह

---

(१) Encyclopedia of Islam p. 946.

(२) जिंदीक शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। प्रतीत होता है कि वस्तुतः इस शब्द का मूल अर्थ पारसियों का द्योतक था और इसका संबंध उनके धर्मग्रंथ जेंद से था। धीरे धीरे इस शब्द का प्रयोग स्वतंत्र विचार के लोगों के लिये होने लगा। मुसलमानों में जो स्वतंत्र विचार रखते थे और बात बात में आसमानी किताबों की दाद नहीं देते थे मुसलिम उन्हें जिंदीक कहने लगे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

परमात्मा से प्रेम कर रहा है। वास्तव में तो वह उस परम प्रेम के पीछे पीछे चल रहा है जिसका आश्रय परमात्मा है। करखी (मृ० ८७२) ने जिस प्रेम और सुरा का संकेत किया था उसको यजीद ने भड़का दिया। विरही तड़प उठे और 'प्रेम पियाला' चल पड़ा। लोग उसके मद में मस्त हो गए। यजीद ने सिद्ध कर दिया कि प्रेम की दशा में बाह्य कृत्यों का कुछ महत्त्व नहीं। उसको तृप्ति तो तब मिली जब उसके प्रियतम ने उससे 'ओ तू मैं' कहा। यजीद ने अपने को धन्य कह इस बात की घोषणा की कि उसके परिधान के नीचे परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उसने 'फना' का प्रतिपादन कर सूफी मत में आर्य-संस्कारों को भर दिया और भविष्य के सूफियों के लिये अद्वैत का मार्ग खोल दिया।

जूलनून एवं यजीद ने पीरी-मुरीदी[1] पर भी पूरा ध्यान दिया। जूलनून ने सच्चे शिष्य को गुरु-भक्त बनने का यहाँ तक आदेश दिया कि वह परमात्मा की भी उपेक्षा कर गुरु की आज्ञा का पालन करे। यजीद ने घोषणा की कि यदि व्यक्ति-विशेष गुरु नहीं करता तो उसका इमाम शैतान होता है। इस प्रकार जूलनून और यजीद ने सूफी मत के मुख्य अंगों को परिपुष्ट कर मादन-भाव को व्यवस्थित कर दिया।

दमिश्क, खुरासान, बगदाद प्रभृति स्थानों में जो मठ स्थापित हो गए थे उनमें सूफी मत की कसरत हो रही थी। इधर बसरा में मुहासिबी ने जिस संस्था का संचालन किया वह अपने मत के प्रचार में मग्न थी। कुरान में जिस 'जिक्र' का विधान था उसका मंतव्य कुछ भी रहा हो, सूफियों ने सामूहिक रूप से उसका संपादन किया। उनका 'सुमिरन' सलात से बहुत आगे बढ़ गया। रामभरोसा उनको इतना था कि काम-काज छोड़ सदैव सुमिरन में

(१) J. R. A. Society 1906 p. 322.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लगे रहते थे। उनकी यह पद्धति इसलाम के अनुकूल न थी। प्राचीन नबियों की भाँति उनका भी उपहास किया जाता था। मुहासिबी तथा बायजीद को कहने मात्र से संतोष न हो सका। उन्होंने तसव्वुफ पर कुछ लिखा भी। उनकी इन कृतियों का महत्त्व कुछ इसी से समझ में आ जाता है कि इमाम गजाली ने भी इनका अध्ययन किया। प्रस्तुत काल में अब्बासी शासकों में न तो वह शक्ति रही, न विद्या-प्रेम ही। सच बात तो यह है कि इस समय मुसलिम संघ एवं साम्राज्य नाना प्रकार की दलबंदियों में फँस गया था। न जाने इसलाम के कितने विभाग होते जा रहे थे। इधर सूफी तसव्वुफ की परिभाषा[1] में लगे थे। यदि हद्दाद तसव्वुफ को आत्मशिक्षण मानता है तो तुस्तरी उसको मितभोजन, प्रपत्ति एवं एकांतवास समझता है। नूरी की दृष्टि में तो सत्य के लिये स्वार्थ का सर्वथा त्याग ही तसव्वुफ है। उसके विचार में निर्लिप्त ही सूफी है। परिभाषाओं के आधिक्य से प्रतीत होता है कि अब सूफी मत का सत्कार हो रहा था और लोग उसका परिचय भी माँगने लगे थे।

यजीद के अनंतर सूफी मत का मर्मज्ञ एवं इसलाम का ज्ञाता जुनैद (मृ० ९९६) हुआ। जुनैद उन व्यक्तियों में एक है जिनका सम्मान मुल्ला और फकीर दोनों ही करते हैं। हल्लाज (मृ० ९७८) जब यातनाएँ झेल रहा था, जुनैद उस समय भी मुक्त था। वह स्वयं[2] कहता था कि हल्लाज और उसके मतों में विभिन्नता न थी। हल्लाज के दंड का कारण उसका तर्क या गुह्य विद्या का प्रकाशन था और उसके सम्मान तथा संरक्षा में सहायक उसका प्रमाद अथवा दुराव था। जुनैद अवसर देखकर काम करता था। गुप्त रूप

---

(१) J. R. A. Society 1906 p. 335-347.

(२) Studies in Taswwuf p. 132.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

से गुह्य विद्या की शिक्षा देता और बाहर से कट्टर मुसलिम बना रहता था। वह ऊपर से इसलाम के क्रिया-कलापों का प्रचार, पर भीतर भीतर गुप्त तत्त्व का प्रसार करता था। उसकी दृष्टि में तसव्वुफ उग्र होता है। उसके विचार में वही सूफी है जो परमेश्वर में इतना निरत रहता है कि उसके अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता का उसे भान भी नहीं होता। जुनैद के गुप्त-विधानों से तसव्वुफ को चाहे जितनी मदद मिली हो, पर उसके निबंधों से गजाली को पूरी सहायता मिली। हल्लाज तो जुनैद का शिष्य ही था। जुनैद का मौन व्याख्यान शिष्यों की मनोवृत्तियों को साक्षात्कार के लिये लालायित करता था। वह स्वतः आवेश की दशा में सूफी मत का विधान करता और इसलाम के नृशंस शासकों को शांत रखता था।

सूफी मत का शिरोमणि, तसव्वुफ का प्राण, अद्वैत का आधार, शहीदों का आदर्श सचमुच हल्लाज ही था। हल्लाज का प्रचलित नाम मंसूर है। मंसूर का 'अनल्हक' सूफी मत की पराकाष्ठा ही नहीं परम गति भी है। यह उद्घोष हल्लाज की स्वानुभूति का प्रसाद है, किसी कोरे उल्लास का उद्भाव नहीं। जिन मसीही पंडितों[1] को इसमें संदेह है और जो हल्लाज को मसीह की छाया मात्र समझते हैं उनको यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिए कि मसीह पिता का राज्य पृथिवी पर स्थापित करने आए थे, प्रियतम में तल्लीन होने नहीं; मसीह चंगा करने आए थे, विरह जगाने नहीं। फलतः मसीह के उपासकों ने रक्त से भूमंडल को रँगा और हल्लाज के प्रशंसकों ने अपने रक्त से संसार को अनुरक्त कर प्रेम का प्रसार किया। मसीह ने पड़ोसी के साथ साधु व्यवहार करने का विधान किया तो मंसूर ने पड़ोसी को आत्मरूप देखने

(१) Studies in the Psychology of the Mystics p. 258.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का अनुरोध। सारांश यह कि मंसूर के मर्म को समझने के लिये शामी संकीर्णता से ऊपर उठ मुक्त भाव-भूमि पर आकर विचारना चाहिए। मंसूर एवं मसीह के मार्ग सर्वथा भिन्न थे। समय भी उनका एक न था। मंसूर मसीह का आदर करता था, उनके आत्मोत्सर्ग को उत्तम समझता था; पर इतने से ही वह उनका अनुयायी नहीं कहा जा सकता। मसीह के 'पिता के राज्य' और मंसूर के 'अनलहक' में बड़ा अंतर है। मसीह संदेश सुनाने आए थे, मंसूर इसी संसार के परिशीलन में 'अनलहक' की अनुभूति दिखा रहा था। मंसूर तो सत्य जिज्ञासा की प्रेरणा से भारत[1] आया था; उसी भारत में जहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' का निरूपण हो रहा था। उसके इस देशाटन का ध्येय रज्जुकला या नाट्य न था। हाँ, वह सूत्र अवश्य था जिसका परिणाम उसका 'अनलहक' है। यजीद परमात्मा में इतना अनुरक्त था कि अंत में उसने 'ओ तू मैं' का साक्षात्कार किया; मंसूर आत्म-चिंतन में इतना निरत था कि उसने अपने को सत्य कहा। फ्रेंच पंडित मैसिगनन के अनुसंधानों से मंसूर के संबंध में जहाँ अनेक तथ्यों का पता चला है वहीं उसके प्रकृत उद्घोष का उद्घाटन भी संदिग्ध हो गया है। सूफी मत के प्रकांड पंडित उसको द्वैती सिद्ध करना चाहते हैं, पर हल्लाज द्वैतवादी कदापि न था; अधिक से अधिक वह विशिष्ट अद्वैती था। सूफियों ने तो उसे अद्वैत का विधाता माना है।

हल्लाज के आविर्भाव से तसव्वुफ सफल हो गया। उसने प्रेम को परमात्मा के सत्व का सार सिद्ध किया। उसका कथन[2] है—"मैं वही हूँ जिसको प्यार करता हूँ, जिसे प्यार करता हूँ वह

---

(१) A Literary History of Persia Vol. I p. 431.

(२) Studies in Islamic Mysticism p. 84.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मैं ही हूँ। हम एक शरीर में दो प्राण हैं। यदि तू मुझे देखता है तो उसे देखता है और यदि उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है।" हल्लाज के अध्यात्म[1] के संबंध में विचारने का यह अवसर नहीं। यहाँ तो इतना ही स्पष्ट करना उचित है कि हल्लाज 'हुलूल' का प्रतिपादक था। उसने देवलोक की उद्भावना की; और 'लाहूत' एवं 'नासूत'—स्वर्ग एवं मर्त्य—का विवेचन किया। मंसूर ने इबलीस को मित्र-भाव से देखा। उसकी दृष्टि में इबलीस ही अल्लाह का सच्चा भक्त है; क्योंकि अन्य फरिश्तों ने अल्लाह के आदेश पर आदम की उपासना की, पर इबलीस अपने प्रण पर टिका रहा और अनन्य भाव से उसने अल्लाह की आराधना की। मंसूर के प्रयत्न से मुहम्मद साहब को भी उत्कर्ष मिला। हल्लाज ने 'नूर मुहम्मदी' को नबियों का उद्गम सिद्ध किया, 'अम्र' का पालन अनिवार्य माना; फिर भी मुसलिम उसके 'अनल्हक' को न सह सके, उसको प्राणदंड का भागी सिद्ध कर दिया।

मंसूर का वध 'रक्त-बीज' का बध था। मुल्लाओं का दंड-विधान तसव्वुफ का खाद्य बन गया। उस समय सूफी मत के प्रसार का एकमात्र कारण अंतःकरण का प्रवाह ही नहीं था; मोतजिलों के शमन तथा इसलाम की प्रतिष्ठा के लिये जिन बातों की आवश्यकता थी उनका भांडार बहुत कुछ सूफियों के हाथ में था। श्री इकबाल[2] की तो धारणा ही है कि हल्लाज अपने 'अनल्हक' से मोतजिलों को चुनौती दे रहा था। 'कश्फ'[3] की उद्भावना से

---

(१) The Idea of Personality in Sufiism p. 29-33.

(२) Six Lectures p. 134.

(३) बिला कैफ का तात्पर्य है किसी बात को बिना मीन-मेष के स्वीकार कर लेना। अहमद इब्न हंबल ने इस बात पर जोर दिया कि हमें कुरान के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसलाम बहुत कुछ सुरक्षित हो गया। अक्ल की प्रतिष्ठा घटी और नक्ल की मर्यादा बढ़ी। 'बिला कैफ'[1] का माहात्म्य बढ़ा। 'कश्फुल्महजूब' के देखने से पता चलता है कि इस समय सूफियों के कई सिलसिले काम कर रहे थे। तसव्वुफ में प्राणायाम की प्रतिष्ठा हो गई थी। वह दुरूह और गुह्य समझा जाता था। शिबली के पद्यों में अश्लील भाव झलकते हैं। फाराबी (मृ० १००७) ने कुरान एवं दर्शन का समन्वय कर सूफी मत का मार्ग स्वच्छ करने की चेष्टा की; पर सूफी मत को इसलाम की पक्की सनद न मिल सकी।

सूफियों की धाक जम चली थी। कतिपय सूफियों ने अपने को नबियों से अधिक पहुँचा हुआ सिद्ध किया। अबू सईद (मृ० ११०६) एक इसी कँड़े का सूफी था। उसके जीवनचरित से अवगत होता है कि उस समय जनता में सूफी मत का काफी सत्कार था। एक ग्रामीण ने रहस्य के उद्घाटन में उसकी पूरी सहायता की[2]। सईद ने स्पष्ट कह दिया कि यद्यपि सूफी मत का मूलाधार पीर है तथापि अन्य लोगों से भी ज्ञानार्जन करना साधु है। दीक्षा-गुरु के अतिरिक्त शिक्षा-गुरु भी मान्य है। खिरका और पीर का क्षेत्र व्यापक और उदार है। मत में स्वतंत्रता आवश्यक है। सईद समा का पक्का प्रतिपादक और भक्त था। उसकी

अर्थ में किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए। उसका अक्षरशः मान लेना ही ठीक है।

(१) इसलाम आसमानी किताबों का कायल था। हेतुवादियों के तर्क के सामने कुरान की शाश्वत सत्ता कायम न रह सकी। अंत में कहा गया कि अल्लाह सूक्ष्म तत्त्व है। भक्तों के मंगल के लिये अपना व्यक्तीकरण आप ही करता है। उसके आविर्भाव से उसके स्वरूप का बोध हो जाता है। यही कश्फ का तात्पर्य है।

(२) Studies in Islamic Mysticism Chapter I.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दृष्टि में विषय-वासना के विनाश के लिये समा एक अनुपम साधन है। उसके विचार में अंत:करण की प्रेरणा पर ध्यान रखना कुरान का विधान है। हज की अवहेलना कर सईद ने पीरों की समाधि को हज माना। वह इतना उदार था कि कुरान पढ़ते समय नरक के कष्टों को देखकर रो पड़ता था और परमेश्वर से उद्धार के लिये प्रार्थना करता था। खुदी से वह इतना भयभीत था कि सदा अपने लिये अन्य पुरुष का प्रयोग करता था। वह किसी पंथ का प्रवर्त्तक या किसी मत का आचार्य न था। उसका तसव्वुफ उसकी साधना का फल था, चिंता का प्रसव नहीं। वह प्राचीन सूफियों के मार्ग पर चलता और अंतरात्मा की पुकार पर ध्यान रखता था। वह एक भावुक प्रचारक था। उसको कुरान की व्याख्या में अधिक आनंद नहीं मिलता था। वह तो जनता को प्रेम-पाठ पढ़ाता और अल्लाह का भजन करता था। उसने सूफी मत को जनता में बखेर दिया और लोग उसके संचय में मग्न हुए।

सूफी मत ने कर तो सब कुछ लिया, पर उसे इसलाम की सनद न मिली। इसलाम के कट्टर उपासक उसको रोकने में तत्पर थे। परंतु यह वह रोग था जो दवा करने से और भी बढ़ रहा था। नरक के अभिशाप से उनका काम नहीं बन पाता था; सूफी भी अपने मत को कुरान प्रतिपादित अथवा मुहम्मद साहब की थाती कहते थे। मुल्लाओं का दंडबल हृदय के प्रवाह को रोकने में असमर्थ होता जा रहा था। प्रेम के प्रचारक उदात्त सूफियों के सामने किसी दरबारी काजी का जनता की दृष्टि में कुछ भी महत्त्व न था। जनता प्रेम चाहती थी, हृदय खोजती थी, फतवा से उसे संतोष नहीं था। प्रतिभा समाधान चाहती थी, भेद खोलती थी, नक्ल और बिला कैफ से उसे तृप्ति नहीं मिलती थी। संस्कृतियों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के संग्राम में जो मतभेद उठ पड़े थे उनका संघटन अनिवार्य था। तसव्वुफ के लिये इसलाम और इसलाम के लिये तसव्वुफ का विरोध हितकर न था। लोग प्रयत्नशील भी होते तो किसी एक ही पक्ष में फँस जाते थे। अनुभवी सूफी एवं विचक्षण पंडित न जाने कितने हुए पर किसी को तसव्वुफ और इसलाम के समन्वय का यश न मिला। सूफी जनता का मन मोहने में सफल हो रहे थे, उनका संघटन भी हो गया था, उनका साहित्य भी बढ़ रहा था, उनकी पूजा भी चल पड़ी थी, उनके मठ भी बन गए थे; सभी कुछ उनके पक्ष में था तो सही, किंतु उनको प्राणदंड का खटका भी बराबर लगा रहता था। किसी समय जिंदीक की उपाधि दे उनकी दुर्गति की जा सकती थी। इसलाम की अवहेलना उनको इष्ट न थी। इसलाम भी तसव्वुफ के बिना उजाड़ था। सामग्री सब उपलब्ध थी। कमी केवल एक ऐसे व्यक्ति की थी जिसमें दोनों का विश्वास हो, जिसे दोनों जानते-मानते हों, जिसमें दोनों एक में दो और दो में एक हो सकें। संयोगवश इसलाम में एक ऐसे ही महानुभाव का उदय हुआ। उसके प्रकाश में आपस का वैमनस्य नष्ट हो गया। उसने सिद्ध किया कि तसव्वुफ इसलाम का जीवन और इसलाम तसव्वुफ का सहायक है। उसकी धाक इसलाम में पहले ही से जम चुकी थी। लोग सुनना भी यही चाहते थे। फिर क्या था, तसव्वुफ को इसलाम की सनद मिली। उसका व्यवसाय इसलाम में खुलकर होने लगा। तसव्वुफ इसलाम का दर्शन और साहित्य का रामरस हो गया। प्रेम के वियोगी और परमात्मा के विरही आतुर व्यक्तियों का शरण्य यह रसायन ही था जो उनको बार बार मिटाता-बनाता, मारता-जिलाता महामिलन की ओर अग्रसर करता हुआ अद्वैत का अनुभव करा रहा था।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

समन्वय की भव्य भावना ने इमाम गजाली (मृ० ११६८) को जन्म दिया। इसलाम उसकी प्रतिभा से चमक उठा। गजाली इसलाम का व्यास है। उसने धर्म, दर्शन, समाज और भक्ति-भावना का समन्वय कर इसलाम को परितः[१] परिपुष्ट किया। उसने इसलाम को ईमान की क्रिया साबित कर दोनों का उपसंहार दीन में कर दिया। उलझनों के सुलझाने और अड़चनों को दूर करने में अधिकार-भेद बड़ा काम करता है। गजाली ने 'न बुद्धि-भेदं जनयेत्' का आदेश दे गुह्य विद्या को गुप्त रखने का विधान किया। परंतु उसने इस प्रकार की व्यवस्था[२] के साथ ही साथ इस बात पर भी पूरा ध्यान दिया कि जनता प्रतिभा के उत्कर्ष के साथ दर्शन एवं अध्यात्म का अनुशीलन कर सके। उसने भय की प्रतिष्ठा की। उसके विचार में इसलाम का प्राचीन भय जनता के लिये मंगलप्रद और अत्यंत आवश्यक था। वह 'बिनु भय होइ न प्रीति' को अक्षरशः सत्य समझता था। भय को मनोरम बनाने के लिये उसने प्रेम का पक्ष लिया। कुरान के अर्थ अथवा ईमान के विषय में जो विवाद चल पड़े थे उनका समाधान लोकों[३] की कल्पना कर गजाली ने बड़ी ही पटुता के साथ कर दिया। उसका कथन है कि मनुष्य 'मुल्क' का निवासी है। रूह 'मलकूत' से आती और फिर वहीं चली जाती है। संदेश-वाहक फरिश्ते 'जबरूत' के निवासी हैं। अन्य फरिश्ते मलकूत में रहते हैं। इसलाम मलकूत तथा कुरान जबरूत से संबद्ध है। सूफी जो अपने को हक कहते हैं उसका रहस्य यह है कि अल्लाह ने आदम को

---

(१) Muslim Theology p. 237-240.
(२) The History of Philosophy in Islam p. 167-8.
(३) Muslim Theology p. 234.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अपना रूप दिया, उसमें अपनी रूह फूँकी। हदीस है कि जो अपनी रूह को जानता है वह ईश्वर को जानता है। वस्तुतः रूह अंश और ईश्वर अंशी है। अतएव सूफियों का अनल्हक इसलाम के प्रतिकूल नहीं है। स्वयं मुहम्मद साहब रसूल होने के पहले[1] सूफी थे। सूफियों को सचमुच इलहाम होता है। रसूल एवं सूफी का प्रधान अंतर यह है कि जहाँ सूफीत्व का अंत है वहाँ दूतत्व का आरंभ होता है। गजाली वाद-विवाद को व्यर्थ समझता था। उसकी दृष्टि में सत्संग, स्वाध्याय, अभ्यास एवं नियम का पालन ही यथेष्ट था। तर्क-वितर्क तथा कलाम से उसको विशेष प्रेम न था, यद्यपि वह 'हुज्जतुल इसलाम' की उपाधि से विभूषित था। कलाम और नीति के विषय में उसने जो कुछ कहा उसका स्वागत तो इसलाम ने किया ही; पर उसके उस अंग को उसने अपना आधार ही बना लिया जो 'अक्ल' की धज्जियाँ उड़ा, 'नक्ल' की संरक्षा करते हुए,'कश्फ' का निरूपण करता है।

इमाम गजाली की कृपा से तसव्वुफ की प्रतिष्ठा स्थिर हो गई। उसको इसलाम की पक्की सनद मिली। जुनैद के काम को इमाम गजाली ने खूबी के साथ पूरा कर दिया। गजाली के उपरांत तसव्वुफ में जिली, अरबी, रूमी प्रभृति सूफियों ने जो योग दिया उसके संबंध में कुछ कहने की जरूरत नहीं। सूफीमत कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका विकास रुक जाय। तसव्वुफ का प्रवाह सदा गतिशील रहा। उसके द्वार भावों तथा विचारों के स्वागत के लिये सदैव खुले रहे। जिसके जी में जब आए उसमें दाखिल हो उसकी रौनक बढ़ाए। निदान हम उसके विकास का उपसंहार यहीं पर केवल इस दृष्टि से कर रहे हैं कि अब उसको एक व्यवस्थित रूप मिल गया। उसे अपने किसी अंग को पूरा नहीं करना

(१) The Idea of Personality in Sufiism p. 44.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है। उसको इसलाम की सनद मिल गई है। सनद का तात्पर्य यह नहीं है कि सूफियों को आगे चलकर इसलाम के कट्टर काजियों का भय न रहा। इस प्रकार की धारणा सर्वथा असत्य होगी। हम जानते हैं कि बहुत सावधानी से काम लेने पर भी सूफी अपने विचारों के लिये क्रूर शासकों से भीषण दंड पाते रहे हैं। अस्तु, हमारे कहने का सीधा-सादा अर्थ यह है कि गजाली के अनंतर तसव्वुफ इसलाम से अभय हो गया, किंतु सूफियों को कभी भी इसलाम से अभयदान नहीं मिला। अभय की कल्पना भी इसलाम को असह्य है; गजाली तो भय का समर्थक ही था। सूफियों के प्राण तड़पते ही रहे, उनको स्वतंत्र जीवन न मिला। सूफियों की तड़प ने जो रूप धारण किया वह संसार के साहित्य में अपना अलग मूल्य रखता है, उसकी गति निराली है। तसव्वुफ वास्तव में मरुस्थल का नंदन है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका

[नवीन संस्करण]

भाग १६—संवत् १९९२

संपादक

श्यामसुंदरदास

—:*:—

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

PRINTED BY A. BOSE
AT THE INDIAN PRESS LTD.,
BENARES-BRANCH.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लेख-सूची

विषय — पृ० सं०

१—सम्राट् 'अशोक' अथवा 'संप्रति' [लेखक—श्री सूर्य-नारायण व्यास, उज्जैन] १

२—जंबूद्वीप का धर्म, इतिहास तथा भूगोल [लेखक—डाक्टर प्राणनाथ, डी० एस्-सी०, काशी] ... ६७

३—भारत में हूण-शासन [लेखक—श्री वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०, काशी] १२९

४—कुशानकालीन भारत [लेखक—श्री वृंदावनदास, बी० ए०, एल्-एल० बी०, मथुरा] १७१

५—रामचरित-मानस के संवाद [लेखक—श्री चंद्रबली पांडेय, एम० ए०, काशी] १८३

६—भारतवर्ष के साम्राज्य-काल का एक संस्कृत इतिहास [लेखक—रायबहादुर श्री बैजनाथ पंड्या, काशी]... २२३

७—विविध विषय २३१

८—राजस्थानी हिंदी और कबीर [लेखक—श्री सूर्यकरण पारिक, एम० ए०, पिलानी] २३३

९—शक-संवत् [लेखक—श्री वेणीप्रसाद शुक्ल, प्रयाग] २४१

१०—चंदेल राजा परमाल (परमार्दिदेव) के समय का एक जैन शिलालेख [लेखक—श्री हीरालाल जैन, एम० ए०, एल्-एल० बी०, अमरावती] २७३

११—महामहोपाध्याय महाकवि श्री शंकरलाल शास्त्री की जीवनी तथा उनके ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय [लेखक—श्री शिवदत्त शर्मा, देहली] ... २७९

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com